ऋग्वेद चयनिका

भाग—2





संपादक :

श्री रमेश चन्द्र पाण्डेय

संशोधक : जगदानन्द झा

ऋग्वेद चयनिका

(भाग–2)

सप्तम मण्डल से दशम मण्डल तक

संपादक :
श्री रमेश चन्द्र पाण्डेय

संशोधक :
जगदानन्द झा

प्रकाशन वर्ष : 2019

प्रकाशक :
रमेश चन्द्र पाण्डेय
मो. : 9415795776

पुस्तक का नाम :
ऋग्वेद चयनिका (भाग–2)

प्रथम संस्करण – 2019

सहयोग राशि – रुपये 101/–

अभिमत

ज्ञान–विज्ञान के अथाह एवं अक्षय भण्डार वेदों में नैकविध विषयों से सम्बद्ध मन्त्र विद्यमान है। एक ओर ये जहाँ उपासना, ईशस्तुति से सम्बन्धित मन्त्रों को अपने में समाहित किये हुए हैं तो दूसरी ओर इनमें विज्ञान–औषधि विज्ञान, गणित, रसायन, भौतिक विज्ञान आदि से सम्बद्ध मन्त्र समाविष्ट है। कृषि, राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र प्रेम, वाणिज्य के ज्ञान से अनुस्यूत सामग्री वेदों के विषय बाहुल्य को इंगित करती है। इतना ही नहीं, इनमें पर्यावरण को संरक्षित एवं संतुलित करने का सन्देश है तो आतंकवाद, क्षेत्रीयतावाद, भ्रष्टाचार जैसी वर्तमान यथावत् समस्याओं के समाधान भी हैं। सत्य, अहिंसा, तप, त्याग जैसे उदात्त शाश्वत मूल्यों के संवहक वेदों में विश्वशान्ति का संगीत भी गुन्जित होता है।

अनेक बहुमूल्य विचार–रत्नों के रत्नाकर वेदों में अद्वितीय भाव गरिमा से युक्त मन्त्र हैं। **'ऋग्वेद चयनिका'** कृति के सम्पादक श्री रमेश चन्द्र पाण्डेय ने इस वेद रत्नाकर में अवगाहन करके रत्नों को उसमें से निकालकर अपनी कृति में संजोया है। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ' उक्ति को श्री पाण्डेय ने चरितार्थ किया है। उन्होंने अत्यधिक परिश्रम एवं मनोयोग से मन्त्र–रत्नों का चयन कर 'चयनिका' के रूप में उन्हें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। आशा ही नहीं विश्वास भी है कि उनकी यह कृति जिज्ञासु पाठकों व विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक एवं उपयोगी सिद्ध होगी।

इस अत्यधिक जटिल तथा दुरूह कार्य को सम्पन्न करने के लिए सम्पादक को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ : "शुभास्ते पन्थानः स्युः।"

हितैषिणी,

डॉ. पुष्पा मलिक
पूर्व एसो. प्रो./अध्यक्ष–संस्कृत
भ. आर्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय लखीमपुर–खीरी

प्राक्कथन

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन्
लीनं परं ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

(स्कन्दपुराणम् माहे. कौमार. 55/140)

इष्टदेवी भगवती (बेलकेश्वरी) परम्बा के अनुग्रह से मुझे ऋग्वेद चयनिका को सम्पादित करने का अहेतुक सौभाग्य एवं पितरों का पुण्य शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ है। चारों वेदों का स्वाध्याय कर उसने अच्छे से अच्छे मंत्रों एवं सूक्तों का (अर्क एवं भावार्थ) संकलन कर अपने स्वान्तः सुखाय स्वाध्याय के लिए चयनित किया था लेकिन विद्वान् श्री जगदानन्द झा जी के परामर्शानुसार इसे प्रकाशित करने इच्छा जागृत हुई। चयनिका के सम्बन्ध में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इन वेदमंत्रों की मनोमोहक सुगंध ने मेरे मानस को सुरभित किया है, उस सौरभ के प्रसाद को अपने तक सीमित न रखकर सुधी उपासकों को विस्तीर्ण करूँ। इस प्राक्कथन में ऋषियों/ मुनियों/विद्वानों एवं टीकाकारों के वेद के संदर्भ में विशेष कथनों एवं उक्तियों को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वेद हमारे सनातन धर्म के चक्षु उत्स, प्रमाणिक शास्त्र एवं अमूल्य धरोहर हैं, जिसके प्रत्येक सूक्त, अक्षर, वर्ण अपना गूढ़ एवं गम्भीर अर्थ रखते हैं। दक्षिण भारत के विद्वानों ने पद–पाठ, क्रम–पाठ, शिक्षा–पाठ, शिखा–पाठ एवं धन पाठों के द्वारा इनके अक्षरों के आवृतियों को अभी तक सुरक्षित रखा है, वेद अपौरुषेय हैं। वेदों के मंत्र ऋषियों एवं मुनियों के ज्ञान समाधि की अवस्था में प्रकाशित हुए हैं। वेद वीर रस के काव्य हैं। वैसे तो वेदों को **अनन्ता वै वेदाः** कहा गया है।

उपनिषद् परमेश्वर के निःश्वास बताए गए हैं; जिस प्रकार मनुष्य के निःश्वास अनायास आते–जाते रहते हैं उसी प्रकार वेद की दार्शनिक धारा उपनिषद् परमेश्वर की निःश्वास से निकलते रहते हैं और उसी में विलीन भी होते हैं।

वेद सर्वप्रथम ऋषियों के हृदय में उतरे थे। लोक हित के लिए परमात्मा ने इन वेदों का प्रकाश किया था। स्वयं वेद इन बात के साक्षी हैं कि वेद उसी परमात्मा की वाणी हैः–

''उसे सबके द्वारा बुलाए जाने वाले यजनीय परमात्मा से ऋचाएँ, साम उत्पन्न हुए, उसी से छन्द प्रकट हुए, उसी से यजुः प्रकट हुए।'' (यजु. ई. 1/7)।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम। (मनुस्मृति)। धर्म का मूल वेद हैं। धारण करने के कारण इसे धर्म कहा जाता है और यही धर्म प्रजाओं को धारण करता है। जगत की स्थिति धर्म के कारण ही है।

ईश्वर के अनादि ज्ञानों में अनुविद्ध शब्द राशि ही वेद है, जैसे, विचार–ऋग्वेद, क्रिया–यजुर्वेद, भक्ति–सामवेद और एकाग्रता–अथर्ववेद में जो परस्पर सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध चार वेदों में भी है। इसलिए ये चारों वेद परस्पर भिन्न न होकर एक ही वेद है।

वेद मानव–जीवन के लिए उपयोगी विविध ज्ञान–विज्ञान की अमूल्य निधि है, इनमें ब्रह्म विद्या, आत्म विद्या, भूत विद्या, नक्षत्र विद्या, कृषि विद्या, वाणिज्य विद्या, औषधि विद्या आदि विभिन्न विद्याओं के स्वच्छ स्रोत प्रस्फुटित हो रहे हैं। विशेषकर भक्ति रस में स्नान कर श्रोता का हृदय नितान्त निर्मल, शान्त और रस विभोर हो उठता है।

पारलौकिक सुखजनक, उच्चारण वाला तथाजन्य ज्ञान से अजन्य जो प्रमाण शब्द हैं, वही वेद है। वेद का लक्षण– अलौकिक अर्थ बताता है।

पूर्व कल्प की आनुपूर्वी के अनुसार ही उत्तर कल्प की आनुपूर्वी रहती है, उसमें एक भी वर्ण या भाषा का परिवर्तन नहीं होता है।

हिरण्यगर्भ प्रकृति देवतागण परमात्मा के अनुग्रह से पूर्वकल्प भी वेदानुपूर्वी को याद कर लेते हैं, जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो उसकी बुद्धि में वेदों का आविर्भाव करता है, यही श्रुति इसमें प्रमाण है। ज्ञान तो निराकार और अमूर्त है।

जन्माद्यस्य यतः (1.1.2 ब्रह्मसूत्र)—ब्रह्म देवादि सृष्टि का कर्ता और उपादान कारण है तथा शब्द निमित्त कारण है।

शास्त्रयोनित्वात् (1.1.3—ब.सू.)—परमेश्वर की सर्वज्ञता ब्रह्म ही ऋग्वेदादि शास्त्र के कारण हैं।

अत एव च नित्यत्वम् (1.3.29—ब्र.सू.) — वेद नित्य हैं क्योंकि ईश्वर के समान वे भी जगत की उत्पत्ति में कारण है।

ज्योतिषि भावाच्च (1.3.32—ब्र.सू.)—आकाश स्थित जो ज्योतिर्मण्डल दिन—रात घूमता हुआ जगत को प्रकाशित करता है उसमें आदित्य आदि देवता वाचक शब्द प्रयुक्त हैं।

देह को स्वस्थ और अर्जित रखने के लिए जैसे उचित आहार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर, मन, बुद्धि आदि के लिए समुचित वेद की आध्यात्मिक खुराक आवश्यक है।

वेदों में ब्रह्मविद्या सर्वोत्कृष्ट महत्वपूर्ण विद्या है, क्योंकि सभी वेदों का मुख्य तात्पर्य ब्रह्म का प्रतिपादन ही है।

जिस प्रकार ईश्वर अनादि—अपौरुषेय है उसी प्रकार वेद भी अनादि—अपौरुषेय हैं। वेद को देव, पितर और मनुष्यों का सनातन—चक्षु कहा गया है। मनु के अनुसार तीनों कालों में इनका उपयोग है और सभी ज्ञान वेद से प्राप्त होता है। वेद ब्रह्म विद्या के ग्रन्थ भाग नहीं, स्वयं ब्रह्म है—शब्द ब्रह्म हैं।

ऋग्वेद (प्रज्ञानं ब्रह्म)। यजुर्वेद (अहं ब्रह्मास्मि) सामवेद (तत्त्वमसि)। अथर्ववेद (अयमात्मा ब्रह्म)।

तीनों वेदों का ही नाम गरुड़ है। वे ही अन्तर्यामी परमात्मा का वहन करते हैं।

चित्त, जीव और माया भगवान की तीन शक्तियां हैं, उनकी वृत्तियाँ नित्य हैं।

वेद के मंत्र संकेतात्मक एवं प्रायः क्रियात्मक हैं तथा सर्वज्ञानमय होने के कारण उनमें अव्यता तथा बहुर्थी प्रवृति के कारण उनमें अर्थ की नैश्चित्य ही नहीं हो सकता। प्रत्येक मेधावी मंत्र इतना घनीभूत अर्थ वहन करता है कि उसे इतने अन्य शब्दों में स्पष्ट किया ही नहीं जा सकता।

वेद को ईश्वर का ज्ञानमय तप कहा है। निखिल सृष्टि का जो ज्ञान और विज्ञान है, वह सत्य का ही रूप है।

ऋक्, यजुः, साम का अधिष्ठान मन है। मन ही अमृत है। मन से ही सप्त होता यज्ञ का वितान होता है, ऐसे मन पर अधिकार पाने के लिए शिवसङ्कल्प से ही सम्भव है। देव लोक में जो मन रूपी कल्पवृक्ष है, उसकी दिव्य शक्तियों को शिव संकल्पों से जाना जा सकता है। स्वयं अन्तःकरण की प्रेरणा से तथा श्रद्धा युक्त मन से तप में प्रवृत्त होना सब विधानों का एकमात्र सार है।

मनुष्य प्राण और अपान के दो संयुक्त तारों का एक टुकड़ा है। इन्द्र कर्मेन्द्रिय (Motor) का स्वामी है, अग्नि ज्ञानेन्द्रियों/ Sensory का। इन्द्र अध्यात्म अर्थ में आत्मा है।

पूर्व जन्म का किया कर्म नष्ट नहीं होता। कर्म जन्म–जन्मान्तर में आत्मा के साथ लगा रहता है। पुनर्जन्म की अवधारणा एक ध्रुव सत्य है।

पहले किए कर्म का फल सभी प्राणियों को वायु, जल तथा अग्नि आदि के द्वारा इस जन्म में अथवा पुनर्जन्म में मिलता

ही है। मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा वायु के साथ विचरण करता हुआ जल, औषधि आदि के द्वारा वीर्य में प्रवेश करता है। यमदूत (वायु) जीव का हरण करता है।

वेद तत्त्व बीज अव्यक्त भाव से व्यक्त सृष्टि के रूप में एक तत्त्वमूल है। बहुधा अनेक तत्व हैं। उसी एक का विचार विश्व है। एक तत् है। बहुधा इंद्र सर्वत्र है। एक अव्यक्त भाव है, उस अदृश्य के लिए वेदों में तत् संकेत है। बहुधा को व्यक्त, स्थूल या दृश्य कहते हैं जो एतत् या विश्व या भूत है।

वैदिक वाक्य नित्य हैं। चक्षु ही जमदग्नि, कूर्म ही कश्यप एवं प्राण ही कश्यप है। वाणी (नाद)–ऋग्वेद मन (श्रुति)–यजुर्वेद एवं प्राण (स्वर)–सामवेद है। अग्नि, संवत्सर एवं ब्राह्मण ही वैश्वानर है।

अथर्ववेद को ब्रह्म के समान बताया गया है। अथर्व वेदज्ञ ब्रह्मा ही यज्ञ में आए विघ्नों को दूर कर कर्म को तेजस्वी बनाता है। अथर्ववेद को ही त्रयी (तीनों वेदों का) का सार मानना पड़ेगा। अथर्ववेद अकेला ही चारों वेदों का प्रतिनिधित्व करता है। उच्च/उपांशु ध्वनि मंत्र का धर्म है, वेद का नहीं।

वेदों की आत्मा सत् (त्रिकालाबाधित) ज्ञान है। वेदान्त का अर्थ स्वाधीनता एवं स्वतंत्रता या संसार से सम्बन्धाभाव का ही समर्थन करता है। संसार नामरूप का परिणाम है, वेदान्त हमें शक्ति प्रदान करता है। (स्वामी रामतीर्थ)

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। विज्ञान का कार्य यशस्वी कर्मों का विस्तार करना है। वेद शरीर का प्राण वायु यज्ञ है। वेद यानि नारायण साक्षात् अग्नि तत्त्व सर्वाधिक तेजोमय तत्त्व के रूप में हुआ है। विराट पुरुष द्वारा सृष्टि का विस्तार किया गया है। वेद जीवन का संविधान है। यज्ञ कल्याण और आयु का स्रोत है। प्राण की यज्ञरूपता में प्राण का प्रतिपल क्रियाशीलता तथा जागृति क्रिया प्राण का प्रतिपादन हुआ है।

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति। एक शब्द का भी यदि सम्यग् ज्ञान हो गया, शास्त्रानुसार उसका सही प्रयोग हो सका तो वह स्वर्ग तथा लोक में भी कामनाओं को पूरा करने वाला है।

ध्यान

ऋग्वेद का ध्यान—ऋग्वेद श्वेत वर्णवाले, उनकी दो भुजाएँ, मुखाकृति गर्दम के समान है, वे अक्षमाला से समन्वित, सौम्य स्वभाव वाले, प्रसन्न रहने वाले तथा सादा अध्ययन में निरत रहने वाले हैं।

यम् ज्योतिरजं स्मं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन् मां धेहि पवमानाऽमृतेलोके अक्षितइन्द्रायेन्दोपरिस्वमव।।

(ऋ. 9.114.7)

हे (पवमान) पवित्र सोमः (यम अजस्मंज्योतिः) जहाँ पर अखण्ड तेज है और (यस्मिन् लोके स्वःहितम्) जिस लोक में सूर्य—स्वर्ग—सुख स्थित है, (तस्मिन्) उस (अमृते अक्षिते लोके) अमर और अक्षीण लोक में (मां धेहि) मुझे रख। हेः (इन्द्रो इन्द्रायपरि—स्भव) सोमः तू इन्द्र के लिए बहो।। 7।।

यमानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामा स्तत्रमममृतंभीति इन्द्रायेन्दोपरिस्भव।।

(ऋ. 9.114.11)

(यम आनन्दः च मोदाः च) जहाँ आनन्द और हर्ष, (मुदः प्रमुदः आसते) आल्हाद और प्रमोद—ये चार प्रकार के आनन्द हैं; (यम कामस्य कामाः आप्ताः) जहाँ अमिलापी की सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं, (तत्र मां अमृतं कृषि) वहाँ मुझे अमर करो। हे (इन्द्रो) सोमः तू (इन्द्राय परिस्मव) इन्द्र के लिए बहो।।11।।

वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरितिः शुश्रुम।

वेद स्वयं भगवान के स्वरूप हैं। वे (वेद) उनके (भगवान)

स्वाभाविक श्वास, प्रश्वास एवं स्वयं प्रकाश ज्ञान हैं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। *(शुक्ल यजुर्वेदीय)*

ॐ वह (परब्रह्म) पूर्ण है, यह (कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है। क्योंकि पूर्ण से पूर्ण ही निकलता है, (प्रलय काल में) पूर्ण (कार्य ब्रह्म) का पूर्णत्व लेकर पूर्ण (पर ब्रह्म) ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अन्त में 'ऋग्वेद चयनिका' का सुबोध भाष्य पाठकों के सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे आशा एवं विश्वास है कि ग्रन्थ का स्वाध्याय उन्हें सुखद अनुभव प्राप्त होगा।

उ.प्र. संस्कृत संस्थानम् एवं जगदानन्द झा प्रशासनिक अधिकारी, उ.प्र. संस्कृत संस्थानम् लखनऊ के प्रति असीम आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी प्रेरणा स्रोत से मुझे यह संग्रह सम्पादित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्होंने विशेष रुचि लेकर गम्भीर परिश्रम पूर्वक ग्रन्थ को सर्वाङ्गपूर्ण बनाया है।

यद्यपि ध्यानपूर्वक देखने के बाद इस ग्रन्थ में संभवतः कुछ प्रेस/प्रूफ सम्बन्धी त्रुटियाँ रह गई हैं। सुधी पाठक मुझे क्षमा करेंगे एवं अपने बहुमूल्य सुझावों के देकर अनुग्रहीत करेंगे।

मैं, एतद्द्वारा इन ऋषियों एवं वेद के प्रति नतमस्तक होकर त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये की भावना से यह संकलन/ग्रन्थ उन्हीं को समर्पित करता हूँ।

हरि ॐ तत्सत्

ऋग्वेद—भाग (दो)
सप्तम मण्डल

(14)

1. 109 ऋषिः—मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। देवता—अग्निः। छन्दः—बृहती

समिद्धा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये।।1।।

(जातवेद से) जिससे वेद प्रकट हुए उस अग्नि के लिए (समिधा वयं दाशेमय) समिधाओं से हम परिचर्या करते हैं। (देवाय देवहूतिभिः) इस अग्निदेव के लिए देवस्तुतियों से, तथा (शुक्रशोचिर्षनमस्विनः हर्विर्मिः) पवित्र प्रकाश वाले अग्नि के लिए अन्न लेकर हम हवि की आहुतियों से (दशम) सेवा करते हैं।।1।।

अग्नि से यज्ञ होता है और यज्ञ में वेदों के मंत्र बोले जाते हैं, इस कारण यहाँ अग्नि से वेदों का प्रकट होना बताया गया है। वेदों को प्रकट करने वाले अग्नि के लिए हम समिधायें प्रदान करें, समिधाओं के द्वारा प्रदीप्त करके हम ईश्वर के स्तुति—स्तोत्रों का पाठ करें। फिर प्रदीप्त अग्नि में हम हवि की आहुतियाँ दें।।1।।

(15)

2.129 ऋषिः यथोपरि छन्दः—गायत्री।

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः शुचिः पावक ईड्यः।।10।।

(शुक्रशोचिः अमर्त्यः) शुभ्र किरण वाला अमर (शुचिः पावकः ईष्यः) पवित्र शुद्धता करने वाला स्तुत्य (अग्निः रक्षांसि सेधति) अग्निः राक्षसों का नाश करता है।।10।।

अग्नि जिस प्रकार शुभ कार्यों वाला, अमर, पवित्र और शुद्धता करने वाला है, उसी तरह मनुष्य भी शुद्ध तेजस्वी, सर्वत्र, पवित्रता और शुद्धता करने वाला होकर दुष्टों का नाश करने वाला हो।।10।।

(16)

3, 127. ऋषि–यथोपरि। छन्दः–प्रगाथः (विषयाबृहती समा सतोवृहती)

एना वो अग्नि नमसो-जों नपातमा हुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरति स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्।।1।।

(ऊर्जाः नपातं) बल का पतन न करने वाले (प्रियं चेतिष्ठ) प्रिय और चेतना देने वाले (अरितं स्वध्वरं) प्रगतिशील और उत्तम अहिंसामय यज्ञ निर्माता (विश्वस्य अमृतं दूतं) सबका अमर दूत ऐसे (एना नमला आ हुवे) इस अग्नि को नम्रतापूर्वक (वः) आप सबके हित के लिए मैं बुलाता हूँ।।1।।

अग्नि शारीरिक बल को कम न करने वाला चेतना देने वाला, उत्साह बढ़ाने वाला, चित्त के व्यापार को चलाने वाला प्रगतिशील शीघ्र गति करने वाला, उत्तम रीति से हिंसारहित रीति से प्रशस्ततम कर्म करने वाला तथा सदा चेतन और उत्साह युक्त दूत है।।1।। (मनुष्य प्रिय आचरण करे कि उसका उत्साह सदा बढ़ता रहे, वह सदा उभतिशीण रहे, सबके साथ नम्रतापूर्वक व्यवहार करें।)

(17)

4, 141 ऋषिः–यथोपरि छन्दः–द्विपदा त्रिष्टुप्।

अग्रे वीहि हविषा यक्षि देवान

त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः।।3।।

हे (जातवेदः) जातवेदः (वीहि) जा (हिवषा देवान् यक्षि) हवि से देवों का यजनकर उनको (स्वध्वरा कृणुहि) उत्तम यज्ञवाला बना।।3।।

हे अग्रेः तू जा और हवि से देवों का यजन कर उनको उत्तम यज्ञवाला बना।।3।।

(18)

5, 148 ऋषिः—यथोपरिः देवता—इन्द्रः। छन्दः—त्रिाष्टुप्।

इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र यन्द्रा गिरोदेवयत्तीरूपस्थुः।
अर्वाची ते पथ्याराय एतुस्याम ते सुमताविन्द्रशर्मन।।3।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः (त्वा अभ पस्पृधानासः) तेरे वर्णन करने में यहां इस यज्ञ में स्पर्धा करने वाली (यन्द्राः इमाः देवयत्तीः गिरः) आनन्ददायक और देवत्व को प्राप्त करने वाली ये वाणियाँ (उपस्थुः) तेरे पास उपस्थित होती है, तेरा वर्णन करती है। (ते रायः पथ्या अर्वाचीएतु) तेरे धन के मार्ग सीधे हमारे पास आवें। (ते सुमतौ शर्मन स्याम) तेरी उत्तम बुद्धि में रहकर हम सदा में रहें।।3।।

यदि मनुष्य अपनी वाणी को दिव्य बनाना चाहे तो वह अपनी वाणी को प्रभु की स्तुति करने में लगाएँ। प्रभु के शुभ गुणों का गान करके उन गुणों को अपने अंदर धारण करके मनुष्य भी देव बन सकता है। जो इस प्रभु के दिव्य गुणों का आश्रय लेता है, वह प्रभु की सुमति में रहता है और सदा सुखी होता है।।3।। (जीवात्मा इन्द्र है और उसकी गाएँ ये इन्द्रियाँ हैं। सूर्य, इन्द्र है और गाएँ उस सूर्य की किरणें हैं।।4।।

(22)

6, 201 ऋषिः—यथोपरि

स न इन्द्र त्वयताया इषे धा-स्त्मना चये मधवानोजुनन्ति वम्बी षु ते जरित्र अस्तु शक्ति-यूयं पात स्वास्तिभिः सदा नः।।10।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः (सः) वह (त्वयतायाः इषे नः द्या) तेरे द्वारा दिए गए अन्न का भोग करने की शक्ति हममें रहे, तू हमें धारण कर, हमें सुरक्षित रख। (ये च मद्यवानः त्मना जुनन्ति) जो धनी लोग हविग्यात्र तुझे देते हैं, उनको भी सुरक्षित रख। (ते जरित्रे वस्वी सुशक्तिः अस्तु) तेरी स्तुति करने वाले में निवास करने की उत्तम शक्ति रहे। (यूयं सदा स्वास्तिभिः नः पात) तुम सदा हे देवो कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करो।।10।।

हे इन्द्रः हम सबको अन्न के द्वारा पुष्ट करके, धारण कर; प्राप्त अन्नों का हम उपयोग कर सकें; इसलिए हमारे जीवन को सुरक्षित रख। हमें ऐसी शक्ति प्रदान कर कि हम सुख से निवास कर सकें। हमारा कल्याण हो और साथ में हमारी सुरक्षा भी हो।।10।।

(22)

7, 202 ऋषिः—यथोपरि छन्दः—विराट्

पिबा सोमयिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुप्पावहर्यश्वद्रिः
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वां।।1।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः (सोमं पिब) सोम का यह रस पी, (त्वां मन्दतु) यह सोमरस तुझे आनंद देवे। हे (हर्यश्व) उत्तम घोड़ों को जोतने वाले वीरः (ते सोतुः बाहुभ्यां अर्वा न सुबतः, अद्रिः यं सुषान) तेरे लिए वह सोमरस निचोड़ने वाले के बाहुओं से रश्मियों से संयमित

लिए घोड़े के समान ये पत्थर इस रस को निकालते हैं।।1।।

हे इन्द्रः तू सोम का रस पी, ये सोमरस तुझे आनंद दें। पत्थरों से कूटकर सोमरस निकालते हैं।

(24)

8. ऋषिः-य.प. छन्दः-त्रिष्टुप्।

218 गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः
सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्ति
-रियमिन्द्र जोहुवती मनीष।।2।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः (द्विबर्हाः ते मनः गृभीतं) दोनों स्कूल और सूक्ष्म–स्थानों में रहने वाले ऐसे तेरे मन को हमने अपनी ओर आकर्षित किया है। यहाँ (सोमः सुतः) सोमरस तैयार ही (मधूनि परिषित्ता) शहद उसमें मिलाया है। (विसृष्टधना इयं जोहुवती मनीषा सुवृक्तिः) मध्यम स्वर से उच्चारी जाने वाली यह प्रार्थनामय मनन योग्य स्तुति (इन्द्रं भरते) इन्द्र के लिए उच्चारी जाती है।।2।।

हे इन्द्रः तू सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्थानों में अर्थात् सर्वत्र व्यापक होकर रहता है। जिव्हा जिसमें शनैः–शनैः प्रयुक्त की जाती है, अर्थात् मध्यम स्वर से जिसका उच्चारण जाता है, वह मननीय उत्तम वचनों वाली ईश्वर स्तुति है। यही मानवों की तारक है।।2।।

(27)

9, 236 ऋषि–य.प.

इन्द्रो राजा जगतश्चर्णणीना

–मधि क्षमि विषुरूप यदस्ति।
ततो ददाति दाशुष वसूनि
चोद्द राध्र उपस्तुतश्चिद्वाक्।।3।।

236 (जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा) जंगम और मानव इन सबका इन्द्र ही एकमात्र राजा है। (अग्नि क्षमि यत विषुरूपं अस्ति) इस पृथिवी पर जो नाना प्रकार के रूपों वाला जो भी कुछ है, उसका भी वही राजा है। (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) इसलिए वह दाता को धन देता है। वह (उप स्तुतः चित्) स्तुति करने पर (राघः अर्वाकचादत्) धन को हमारे समीप प्रेरित करता है।।3।।

इस पृथ्वी पर जितने भी कुरूप या स्वरूप पदार्थ और मनुष्य हैं, उन सबमें वह प्रभु द्वन्द्र वास करता है। सभी स्थावर और जंगम जगत् का भी वही एकमात्र स्वामी है। वह दाता के लिए अनेक तरह के धन देता है। जो उदार चरित्र है, उन्हें प्रभु हर तरह की समृद्धि प्रदान करता है।।3।।

(31)

10, 262 ऋषिः–य.प.। देवता–इन्द्रः। छन्दः–गायत्री।

ऊर्ध्वा सस्त्वान्विन्दवो भुवन् दस्यमुपहविं।
सं ते नमन्त कृष्टयः।।9।।

(उपद्यावि त्वा दस्य) द्युलोक के समीप तुम दर्शनीय के लिए (ऊध्वासः इन्दवः भुवन) ऊपर–ऊपर चढ़ने वाले सोम सिद्ध हो रहे हैं। (कृष्टयः ते सं नमन्त) और प्रजाएँ तुम्हें नमन् करती हैं।।9।। हे इन्द्रः अत्यन्त सुन्दर ऐसे तेरे लिए उत्साह प्रदान करने वाले सोम रस तैयार किए जा रहे हैं और उसके साथ ही प्रजाएँ नम्रतापूर्वक तेरी स्तुति गा रही है।।9।।

11, 264 ऋषि.............य.प.

उरुव्यचसे महिने मिन्द्राय सुवृक्ति ब्रह्म जनयन्त वित्ताः।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः।।11।।

(अरुव्यचसे महिते इन्द्राय सुवृक्ति) चारों ओर यश से फैले और बड़े इन्द्र के लिए स्तुति और (ब्रह्म विप्ताः जयन्त) हविष्यात्र ज्ञान लोग तैयार करते हैं। (तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति) उसके संरक्षणादि व्रतों का निषेध धीर पुरुष भी नहीं कर सकते।।11।।

सभी प्राणी उस प्रभु की महिमा का गान करते हैं और सभी उसके नियमों के अनुकूल होकर चलते हैं, क्योंकि ज्ञानी भी उस प्रभु के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते। तब साधारण प्राणियों की तो बात ही क्या।।11।।

(32)

12, 278ः—ऋषि—य.प. इन्द्रः—प्रगाथः—(बृहती, सतोबृहती)

मन्ममखर्व सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुर्वत।।13।।

(अश्वर्वे सुधितं सुपेशसं मंत्रं) बड़ा उत्तम बनाया मंत्रों का स्तोत्र (यज्ञियेषु आदधात) यज्ञ के योग्य देवों में इन्द्र के लिए ही अर्पण करो।। (यः कर्मणा इन्द्रे भुवत्) जो अपने स्तोत्रगान रूप कर्म से इन्द्र के मन में स्थान पाता है, (तं पूर्वीः प्रसितयः न तरंतिचन) उसको कोई बन्धनकार नहीं देते।।13।।

इन्द्र सभी देवों में प्रमुख है। वह देवों का राजा है, इसलिए वह सभी तरह की स्तुतियों के योग्य है जो अपनी उपासना के द्वारा इन्द्र के मन में अपना स्थान बना लेता है, उसे किसी तरह के बंधन कष्ट नहीं देते।।13।।

13, 287ः—ऋषि—य.प.

अभि त्वा शूरनोनुमो उ दुग्धा इव धेनवेः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृश-मीशानमिन्द्रतस्थुषः।।22।।

हे (शूर) शूर इन्द्रः (अस्य जगतः ईशानं) इस जंगम वस्तुजात के स्वामी तथा (तस्थुष ईशानं) स्थावर विश्व के स्वामी ऐसे (स्वदृश त्वा) दिव्यदृष्टिवाले तुमको (अदुग्धाः इव धेनवः) न दुही हुई गौवों जिस तरह दोहन होने के लिए उत्सुक होती है उस तरह हम (अभि नो नुमः) स्तवन करते हैं।।22।।

जो स्थावर और जंगम का एक मात्र प्रभु है, उसी का उपासना करना मनुष्यों के लिए योग्य है। मनुष्य उतनी ही आतुरता से ईश्वर स्तुति करें जितनी न दुही गाएँ दोहन कराने के लिए उत्सुक रहती हैं।।22।।

(33)

14, 302ः—ऋषिः—य.प. देवता—वसिष्ठ छन्दः त्रिष्टुप्

विद्युतो ज्योतिः परिं संजिहानं मित्रवरुणा यदपश्यतां त्वा,
तत् ते जन्मोतैकवसिष्ठा-उगस्त्यो यत् त्वां विश आंजभारं।।10।।

हे (वसिष्ठ) वसिष्ठः (यत् विद्युतः ज्योतिः परिसंजिहानं त्वा) जब विद्युत के तेज का परित्याग करने वाले तुझको (मित्रावरुणा अपश्यतां) मित्र और वरुण ने देखा (तत् ते एकं जन्म) तब तुम्हारा वह एक जन्म हुआ था। (यत् त्वा अगस्त्यः विशः आजभार) तब तुझे अगस्त्य ने प्रजाओं से बाहर लाया।।10।।

वसिष्ठ ने विद्युत के समान तेजस्वी अपनी त्योति को बाहर निकाला। यह देह त्याग की अवस्था का वर्णन है। जीव का स्वरूप विद्युत की ज्योति के समान है। योगीजन इसे स्वेच्छा से अपने शरीर से निकालते हैं और स्वेच्छापूर्वक इतर शरीर में प्रवेश

करते हैं। मित्र और वरुण प्राण और जीवन हैं।।10।।

15, 306:—ऋषिः—य.प.

उक्थमृतं साममृतं विभति ग्रावाणं बिभ्रत् प्रवदात्यमे
उपैनमाध्वं सुमन्स्यभाता आ वो गच्छाति प्रतृदोवसि।।14।।

हे (पतृदः) भरत लोगो (वः वसिष्ठः आगच्छति आपके पास वसिष्ठ आ रहे हैं। (सुमनस्यमानाः एनं आध्वं) उत्तम मनोभावना से इनका सत्कार करो। यह वसिष्ठ आने पर वह (अग्रे उक्थमृतं साममृतं बिभर्ति) पहिले से ही नेता होकर उवत्थ और साम गायकों को धारण करेंगे, तथा (ग्रावणं बिभत) सोमरस निकालने वालि अध्वर्यु का भी धारण करेंगे ओर उन सबको (प्रवदाति) सुना भी देंगे।।14।।

इन्द्र ने भरत की प्रजाओं से कहा कि वे वसिष्ठ को अपना पुरोहित बनाएँ। वे वसिष्ठ पुरोहित बनकर उनके अभ्युदय का कार्य करेंगे और उससे उनकी उन्नति होगी। वेदज्ञ पुरोहित में राज्य की सब व्यवस्थाओं को करने की शक्ति होती है। वह राष्ट्र की हर तरह से उन्नति करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वेदों में हर तरह का विज्ञान है।।14।।

(34)

16, 314:—ऋषिः—य.पं. दे0—विश्वेदवा। छ0—द्विपदा विराट्।

द्वयामि देवाँ अयातुरगे साधष्टतेन धिय दधानि।।8।।

हे (अग्रे) अग्रेः (अपातुः ऋतेन) अहिंसक यज्ञ से (साधन देवान व्हयामि) साधना करता हुआ सहायार्थ देवों को बुलाता हूँ (धियं दधामि च) बुद्धिपूर्वक किए जाने वाले कर्म को मैं धारण करता हूँ।।8।। तपः साधना करने के बाद ही देवगण उसकी सहायक के

लिए जाते हैं। इसलिए सदा पवित्र बुद्धि से कुटिलता रहित कर्मों को करना चाहिए।।8।।

17, 329, ऋषिः—य.प.

सलूर्देविमिरपां नपातं सखायं कृध्व शिवो नो अस्तु।।15।।

(अपां नपातं सखायं कृध्वं) जलों को न गिराने वाले अग्नि को अपना मित्र बनाओ। वह (देवेभिः सजूः नः शिवः अस्तु) देवों के साथ रहने वाला अग्नि हमारे लिए कल्याण करने वाला हो।।15।।

जलों को सुखाने वाले अग्नि को अपना मित्र बनाना चाहिए, ताकि देवों के साथ रहने वाला वह अग्नि हमारा कल्याण करने वाला हो।।15।।

(35)

18 ऋषिः-य.प. छ0-त्रिष्टुप्

344. शं नो अज एकपातु देवो अस्तु
शं नोऽहि र्बुध्न्य 1ःशं समुदः।
शनो अपां नापात पेरुरस्तु
शं नः प्रश्नि र्भवतु देवगोपा।।13।।

(अजः एकपात् देवः न शं अस्तु) एक पादु अज देव हमें कल्याण करने वाला हो। (अहिः बुध्न्यः नः शं) अहिबुध्न्य हमें शांति दे। (समुद्र शं) समुद्र शांति दे। (परः अपां नपात नः शं अस्तु) आपत्तियों से पार करने वाला अपां नपात देव हमें शांति दे। (देवगोपा पृश्निः नः शं भवतु) देवा द्वारा सुरक्षित गौ हमें शांति प्रदान करें।।13।।

उदय के समय सूर्य का एक अंश जो ऊपर जाता है, वह एकपात कहाता है; वह एकपात सूर्य हमारा कल्याण करने वाला

हो। सबको आधार देने वाला तथा कभी नष्ट न होने वाला भूणाधार देव हमें शान्ति दे, समुद्र शांति प्रदान करें। जलों का न गिराने वाला मेधस्थ विद्युत्दूप अग्नि हमें आपत्तियों से पार कराए देव जिसकी रक्षा करते हैं, या जो देवों की रक्षा करता है, वह माता अदिति हमारी रक्षा करें।।13।।

19. ऋषिः-य.प.

346. ये देवानां यज्ञिया यज्ञियाना
मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्ताभुरुगायमद्य
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।15।।

(ये यज्ञियानां देवानां यज्ञियाः) जो पूजनीय देवों के लिए भी पूजनीय हैं, जो (मनोःयजमाः ते। मनु के लिए भी पूज्य हैं वे (ऋतज्ञाः अमृताः) ऋत जानने वाले अमर देव (अद्य उरुगायं नः रासत्तां) आज हमें विस्तृत प्रशंसनीय यश दें, विस्तृत यश प्राप्त करने वाला पुत्र प्रदान करें। (यूयं सदा नः स्वास्तिभिः पातं) आप सदा हमें कल्याण करने वाले साधनों से सुरक्षित रखें।।15।।

जो पूज्यों के लिए भी पूज्य है, जो मननीय विद्वान के द्वारा भी पूज्य है, वे ऋत या नैतिक नियमों के अनुसार आचरण करने वाले देव हमें आज विस्तृत यश प्रदान करें तथा कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें।।15।।

(36)

20. ऋषि-य.प.। दे0-विश्वेदेवाः। छ0-त्रिष्टुप्।

362 अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त
इन्द्रं शरदः सुपृसः।

उपं त्रिबन्धुर्जरदष्टिये-त्यस्ववेशं
यं कृणर्वन्त मर्ताँ।।110

(देवी निर्ऋतिः चित् यं ईशे) देवी भूमि ईशान के लिए (यं अग्नि नक्षन्ते) जिसकी ओर देखती है। (सुपृक्षः शरदः यं इन्द्रं) उत्तम आश्रम युक्त वर्ण जिसको देखते हैं। (मताः यं यस्ववेशं कृण्वत्तः) मनुष्य जिसको अपने घर में ठहरने देते (त्रिबन्धुः जरदष्टि उप एति) वह तीनों लोकों का भाई इन्द्र बहुत बड़े बल से हमारे समीप आ जावे। हमें बड़ा बल देवे।।7।।

भूमि जिसे अपना अधिपति मानती है सभी संवत्सर जिसके लिए सुखमय होते हैं। मनुष्य जिसे अपने हृदय प्रदेश में बिठाते हैं, वह हमारा प्रभु हमें उत्तम बल प्रदान करें।।7।।

(37)

21. ऋषिः-यं.प.

353. उत त्ये नो मरुतो मन्दसानाधियं तोकं च
वाजिनोऽवत्तु।
मा नः परिख्यद क्षरा चर-नयवी
वृधन पूज्यं तरयनिः।।7।।

(उत मन्दसाना वाजिनः त्ये मरुतः) आनंद बढ़ाने वाले बलवान वे मरुत वीर (नः तोकं धियं च अवन्तु) हमारे पुत्रों को और बुद्धियुक्त कर्मों को सुरक्षित रखें।

अक्षरा चरन्ती नः परि मा ख्यत) अविनाशी चलने वाली वाणी हमें छोड़कर किसी अन्य को न देखे। हमारे पास ही रहे। (ते नः युज्यं रमिअवीवृधन) वे मरुद्वार और वाणी हमारे योग्य धन को बढावे।।7।।

सभी प्राणिमात्र को आनन्द देने वाले में बलवान मरुत हमारे पुत्रों और बुद्धियुक्त कर्मों को सुरक्षित रखें। हमारी वाणी हमारी उन्नति का साधन बने। सभी देव हमारी वाणी को प्रशस्त करें।।7।।

(38)

22. ऋषिः-य.प. दे0-सविता। छ0 त्रिष्टुप्।

368 अग्नि ये मियो वनुषः सपन्ते
शतिदिवोरातिपाचः पृथिव्या।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतृ
वरुत्र्येकधेनुमिनिं पातु।।5।।

(ये रातिषावः वनुष्यः मिथः) दानशील भक्त जन मिलकर (दिवः पृथिव्याः राति भमि सपन्ते) द्युलोक और पृथिवी लोक के मित्र रूप सविता की उपासना करते हैं। (बुध्न्यः अहिः उत नः श्रृणोतु) मध्य स्थान में रहने वाला प्रगति मान वह विद्युत रूप अग्नि हमारा स्तोत्र सुने। (वरुणी एकधेनुभिः निपातु) वाग्रदेवी मुख्य गौओं के साथ हमारी सुरक्षा करें।।5।।

यह सविता देव द्युलोक और पृथिवी का मित्र है, मित्र के समान इन दोनों का हित करने वाला है। मध्य स्थान अर्थात् आन्तरिक में रहने वाला यह विद्युत रूप सविता हमारी प्रार्थना सुने।।5।।

(43)

23. ऋषिः-य.प.। दे. विश्वदेवाः। छ.-त्रिष्टुप्।

403 एवा नो अग्ने विप्रवा देशस्य त्वया
वयं सहसावन्तास्का।

शया युजा सघ्रयादो अरिष्टा
एयं पात स्वास्तिभिः।।5।।

हे (अग्रे) अग्रेः (एव विक्षु नः आ दशस्य) इस तरह प्रजाजनों में हमें धन का प्रदान करो। हे (सहसावन) बलवान अग्रेः (त्वया आस्काः वयं) तुम्हारे द्वारा वियुक्त न हुए हम सब (रामा भुजा) धन से युक्त होकर यादः) मोहित रहकर आनंदित होते हुए (.... नष्ट न हो) (यूयं स्वास्तिभिः सदा पात) इस कल्याण करने के साधनों से सदा रक्षा करो।।5।।

हे अग्रे! हम तुमझसे कभी पृथक न हों तथा तेरे द्वारा दिए गए धन से हम सदा सम्पन्न रहें। हम संगठित होकर आनंदित होकर रहें और कभी विनष्ट न हों।।5।।

(44)

24. अधिः-य.प. दे0-दधिका छ.-त्रिष्टुप्।

408 आनो दधित्राः पथ्यामनक्त्वृ-तस्य पन्णामन्नेतवाउ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वेमहिषा
आयूराः।।5।।

(दधित्राः ऋतस्य पन्थां अनुएतवै) दधिका अश्व यज्ञ मार्ग से जाने के लिए (नः पथ्मां आ अनन्तु) हमारे मार्ग को जब से सिंचित करें। (दैव्यं शर्धः अग्निः) दिव्य बल रूप यह अग्नि (नः श्रृणोतु) हमारी प्रार्थना का श्रावण करें तथा (विश्वे महिषाः अमूराः श्रृण्वन्तु) सब बलवान ज्ञानी विबुध हमारी प्रार्थना सुनों।।5।।

सब लोग यज्ञ करें, सीधे मार्ग से जावें। दिव्य बल प्राप्त करें। दिव्य बल प्राप्त करें, ज्ञान बल प्राप्त करें, सामर्थ्य प्राप्त करें। देवों के गुण गाकर स्वयं देव जैसे बनें।।5।।

(47)

25. ऋषिः-य.प.। दे0-आपः। छ.-त्रिष्टुप्।

419 शतपवित्राः स्वधया मदन्ती-
र्देवीदेवानामपि यत्तिपायः।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्योहव्यं
घृतवज्जुहोत।।3।।

(शतपवित्राः स्वधया मदन्त्रीः) सैकड़ों प्रकारों से पवित्रता करने वाले और अन्न के साथ आनंद देने वाले (देवीः देवानां पाथः अपि यन्ति) दिव्य जल देवों के यज्ञस्थान को प्राप्त होते हैं। (ताः इन्द्रस्य व्रतानि न मिनन्ति) वे जल प्रवाह इन्द्र के कार्यों का नाश नहीं करते हैं। प्रत्युत सहायक होते हैं। इसलिए आप (सिन्धुभ्यः धृतवत हव्यं जुहोत) नदियों के लिए घृत मिश्रित हव्य का हवन करो।।3।।

ये दिव्य जल अनेक तरह पवित्रता करने वाले और अन्न के साथ आनंद देने वाले हैं। ये जल प्रवाह इन्द्र के कार्यों का नाश नहीं करते।।3।।

(49)

26. ऋषिः-य.प.। दे0-आपः।

428. यास्तु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा
यासूर्ज मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्ट-स्ता आपों
देवीरिह मामवन्तु।।4।।

(राजा वरुणः यास्तु) वरुण राजा जिन जलों में रहता है, (सोमः यास्तु) सोम जिनमें रहता है, (विश्वे देवाः यासु ऊर्जं

मदन्ति) सब देव जिनमें अन्न प्राप्त करके आनंदित होते हैं। (वैश्वानरः अग्निः यासु प्रवष्टिः) विश्व संचालक अग्नि जिनमें प्रविष्ट हुआ है। (ताः देवीः आपः इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहाँ मुझे सुरक्षित रखें।।4।।

इन जलों में वरुण राजा रहता है, इन्हीं जलों में सोम रहता है। इन सभी जलों के द्वारा प्राप्त करके सब देव आनन्दित होते हैं। वे दिव्य जल मेरी सुरक्षा करें।।4।।

(59)

57. ऋ. य.प.। दे0-रूद्र। छ.-अनुष्टुप्।

502 त्र्यम्बकं यजामहे सुगान्धिे पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धना-न्मृत्योमुक्षीय यामृर्तात्।।12।।

(सुगन्धि) उत्तम यशस्वी (पुष्टिवर्धनं) पोषण साधनों का संवर्धन करने वाले (त्र्यबकं) तीन प्रकार से संरक्षण करने वाले देव की (यजामहे) हम उपासना करते हैं। यह देव (ऊर्वारुकं इव) ककड़ी को मुक्त करते हैं उस तरह (मृत्योः बन्धनात मुक्षीय) मृत्यु के बंधन से हमें मुक्त करे, परन्तु (अमृतात् मा) अमरत्व से कभी न छुड़ावे, परन्तु हमें अमरत्व से संयुक्त करें।।12।।

उत्तम यशस्वी, पोषण साधनों का संवर्धन करने वाले तथा तीन प्रकार से, संरक्षण करने वाले देव की हम उपासना करते हैं। स्वयं के प्रमाद से भय राष्ट्र के दोषों से मय तथा प्रकृति से भय ये तरी तरह भय होते हैं। देव मनुष्य को इन तीनों भय से युक्त करें तथा इस प्रकार मृत्यु के बंधनों से मुक्त हों, पर अमृत की स्थिति से कभी दूर न हों।।12।।

(63)

28 ऋषि-य.प. दे0-सूर्य

529 उद्वेति प्रसवीता जनानां महान केतुरर्णवः सूर्यस्य।
समान चकं पर्याविवत्सन् यदेतशो
वहति घूर्थुयक्तः।।12।।

(जनानां प्रसविता) सब लोगों का प्रेरक (महान् केतुः) बड़े ध्वज के समान सबको ज्ञान देने वाला (अर्णवः) जीवनदाता (सूर्यस्य) यह सूर्य (उत् उ एति) उदय का प्राप्त होता है। (समानं चक्रं परि आविवृत्सन) सबके लिए एक ही कालचक्र को घुमाता हुआ, (यत् धूर्षु युक्तः एतशः वहति) जिस चक्र को धुरा में जाता हुआ अश्व चलाता है।।12।।

यह सूर्य देव सब लोगों को सत्कर्म में प्रेरित करता है। सूर्योदय होते ही ईश्वर स्तुति प्रार्थना, उपासना, यज्ञ याग्र आदि अनेक तरह के सत्कर्म शुरू हो जाते हैं। सूर्य सत्कर्म का सूचक एक महान ध्वज है। सूर्य अपनी किरणों के द्वारा जीवन को पृथिवी पर भेजता है, इसलिए वह जीवन निधि है। वह काल चक्र का प्रवर्तक है।।12।।

(64)

29. ऋषिः य.प.। दे. मित्रवरुणो।

534 दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्रवां घृतस्यं निर्विजो
ददीरन्।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो
राजा सुक्षत्रो वरुणो जुष्यन्त।।1।।

(दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) तुम दोनों द्युलोक में, अन्तरिक्ष में और पृथिवी में रहते हो, (वां घृतस्य निर्विजः प्र दीदरन्) तुम दोनों जल के रूप को बनाते हो। जल तुमने बनाया हैं। (नः हव्यं) हमारे हव्य का (मित्रः) भिन्न (सुजातः अर्मत्रा) उत्तम कुल में जन्मा अर्मत्रा और (सुक्षनः राजा वरुणः जुषत) उत्तम क्षाम जल से युक्त राजा वरुण सेवन करें।।1।।

ये मित्र तथा वरुण अनारिश्त तथा पृथ्वी पर रहते हैं और तीनों लोकों का व्यापते हैं। ये दोनों देव जल को रूजवान बनाते हैं। इन्हीं देवों के कारण जल नेत्रों के कारण दिखाई देता है। जल पहले गैस या वायुरूप था। भिन्न और वरुण ये दो वायु हैं, वे अग्नि के समक्ष मिलते हैं और जल को प्रकट करते हैं।।1।।

(66)

30. ऋषिः-य.पं.। छ.-पुर उष्णिक्।

559. तच्च क्षुर्देवद्वितंक्शुक्रमुच्चरत।
पश्येम शरदः शत जीवेमशरदः शतम्।।19।।

(तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः) वह देवहित करने वाला बलवान विश्व का आँख जैसा यह सूर्य पुरस्तात् उत चरत्) हमारे सामने उदित हो रहा है। (पश्येमं शरदः शतं) उसे हम सौ वर्ष तक देखते रहें, (शरदः शतं जीवेन) हम सौ वर्ष जीवें।।16।।

मनुष्यों का पालन करने वाले अत्यनत बुद्धिमान होने चाहिए। बुद्धिहीनों से राष्ट्र का पालन अच्छी तरह नहीं हो सकता। मनुष्य परस्पर शुद्ध और पवित्र मन से युक्त होकर ही बातचीत करें।।1।।

(81)

31 ऋषिः-य.प.। दे.-उषसः। छ-प्रगाथः।

654 उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उधभक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो कुषि सूर्यस्य च सं मत्येन गमेमहि।।2।।

(सूर्यः उष्मियाः सचा उत् सृजते) सूर्य किरणों को साथ–2 ऊपर फेंकता है तथा (उद्यत नक्षत्र अर्चिमत) सूर्य उदय होने के पहले नक्षत्रों को तेजस्वी बनाता है। हे उषा देवीः (तत इत सूर्यस्य च कृषि) तेरे तथा सूर्य के प्रकाशित होने पर (भक्ततेन संगमेमहि) अन्न के साथ मिलेंगे अन्न को प्राप्त होंगे।।2।।

सूर्य जब पृथ्वी के नीचे जाता है तब वह अपनी किरणों को ऊपर फेंकता है, जिससे चन्दादि प्रकाशित होते हैं। यहाँ नक्षत्र का अर्थ चन्द्र, बुध, शुक्र आदि ग्रह है क्योंकि नक्षत्र का स्वयं प्रकाश है और वहाँ तक हमारे सूर्य का प्रकाश पहुँच नहीं सकता।।2।।

(82)

32 ऋषिः य.प.। दे.-इन्द्रावरुणौ। छ.-जगती।

668 अस्मे इन्दो वरुणो मित्रो
अर्चना द्युम्रं यच्छन्तुमहिशर्मसप्तमेः
अवघ्रं ज्योतिरदिंतेर्ऋतावर्धा
देवस्य श्लोक सवितुर्मनामहे।।10।।

(इन्द्रः वरुणः भिन्नः अर्यमा) इन्द्र, वरुण, मित्र अर्यमा ये देव (अस्मे) हमें (सप्रथः महिद्युम्नं शर्म यच्छन्तु) विशेष विस्तृत महान तेजस्वी घर–धन या सुख प्रदान करें। (ऋतावधः अदितेः ज्योतिः अवघ्रं) सत्य मार्ग का संवर्धन करने वाली मुदिति तेज हमारे लिए विनाशक न बनें। हम (सवितुः, देवस्य श्लोकं मनामहे) सविता देव की स्तुति करें।।10।।

इन्द्र आदि देवों की कृपा से हमें बड़ा तेजस्वी और अति विस्तृत घर प्राप्त हो। वह घर हमारे लिए सुखदायी हो। सत्य मार्ग का संवर्धन करने वाली अदिति देवों का तेज सदा हमारे घर में रहे तथा हम भी सदा सविता देव की स्तुति करते रहें।।10।।

(86)

33 ऋषि-य.प.। दे-वरुणः। छ.-त्रिष्टुप्।

689 धीरा त्वस्व महिमा जनूषि वि यस्तस्तम्य
रोदेसीचिमी।
प्र नार्कमृष्वं नुन्प्रदे बृहत्तं द्विता
नक्षत्रं पप्रथणयमूम्।।1।।

(अस्यं जनूषि महिताधीरा) इस वरुण के जीवन उनकी जिन महिमा से धैर्य वाले कर्मों से युक्त हैं। (यः उर्वी रोदसी चित वि तस्तंत्र) जो वरुण विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोक को स्थिर करता है। (बृहत्तं नाकं) बड़े विशाल सूर्य का और (ऋष्वनक्षत्रं द्विता प्र नुनुदे) तेजस्वी नक्षत्रों को दो समयों में जो प्रेरित करता है। दिन में सूर्य और रात्रि में नक्षत्रों को प्रेरित करता है तथा भूमि को विस्तृत किया है, वरुण ईश्वर ही है, जो यह सब करता है।।1।।

(86)

34 ऋषिः-य.पं.। दे.-वरुणः।

693 अव दुग्धानि पित्र्या सृजानोऽवं
या वयं चकृमा तनूभिः।
अवं राजन् पशुत्टप् न तायुं
सृजा व्रत्सं न दाम्रोवसिंष्ठम्।।5।।

हे वरुणः (पित्र्या नः दुग्धानि अवसृज) हमारे पिता आदि से द्रोह को दूर करो। (वयं तनूभिः या चक्रम अवसृज) हमने अपने शरीरों से किए जो पाप होंगे उनका भी दूर करो। हे राजन् वरुणः (पशुत्टपं वायुं न अवसृज) पशु की चोरी करके उस पशु को तृप्त करने वाले चोर को जैसे दूर करते हैं। वैसे मेरे पाप दूर करो। (दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज) रस्सी से बच्छड़े को छोड़ने के समान इस वसिष्ठ को पाप से छुड़ाओं।।5।।

पिता–पितामह से जो पाप हुए होते हैं उनका संस्कार हमारे शरीर पर भी होता है बीज रूप से वे दोष हमारे अन्दर आते हैं, उनके छुटकारा प्राप्त करना चाहिए। जो पाप हम अपने शरीर से करते हैं, उनसे भी छुटकारा प्रापत करना चाहिए।।5।।

35 ऋषि-य.प.

695 अरं दासो न मीकहुषे करा-व्यह देवाय मूर्णयेऽनागाः
अचेतयदाचितो देवो अर्यो गृत्सं रायेकवतरोजुनाति।।7।।

(भीकहुप्पे भूर्णये) इच्छाओं को पूर्ण करने वाले और भरण पोषण करने वाले (देवाय) ईश्वर के लिए वरुण देव की (अनागाः) निष्पाप होकर (अहं) मैं (अरं कराणि) सेवा करता हूँ। (दासः न) सेवक के समान मैं ईश्वर की सेवा करूँगा। (अर्यः देवः कचितः अचेतयत्) वह श्रेष्ठ देव हम अज्ञानियों को प्रेरित करता है। (कवितरः गृत्सं राय जुनाति) वह अधिक ज्ञानी ईश्वर स्त्रोता को धन की ओर प्रेरित करता है।।7।।

भक्त को सदिच्छाओं को पूर्ण करने वाले ईश्वर की सेवा में निष्पाप होकर करूं। परमेश्वर सबका पालक है और सबको निष्पाप बनाने वाला है, इसलिए उसकी सेवा करने से मन्द्रष्य निष्पाप बनता है। यह श्रेष्ठ देव अज्ञानियों को ज्ञान देकर सत्कर्म

में प्रेरित करता है और उन्हें धन–प्राप्ति की ओर प्रेरित करता है।।7।।

(87)

36 ऋषिः-य.प.

698 आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत पशुर्न मूर्णियेवसे ससवान्।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाति।।2।।

(ते वातः आत्मा) तेरा आत्म वायु है। वह वायु (रजः आ नवीनोत्) धूलि को चारों ओर उड़ाता है। (पशुः न यवस ससंवान) पशु जैसा घास से अन्नवान होता है, उस तरह (मूर्णिः) भरण पोषण करने वाला प्रभु अन्नवान है। हे वरुणः (इमे मही बृहती रोदसी) ये बड़े द्युलोक की ओर भूलोक के (अत्तः) मध्य में (ते विश्वा धाम प्रियाणि) तेरे सब स्थान सब लोगों को प्रिय है।।2।।

यह वायु सब विश्व का प्राण है। यह चारों ओर धूलि को उड़ाता है अथवा अन्तरिक्ष से वृष्टि के जल को जाता है। सबका पोषण करने वाला प्रभु सब प्रकार के अन्न से युक्त है इसलिए उसके सब स्थान मानवों को प्रिय होते हैं। आत्मा सबका प्रेरक है, वह सब स्थान मानवों को प्रिय होते हैं। आत्मा सबका प्रेरक है, वह सब शरीर को चलाता है, उसी तरह सब विश्व को यह वायुरूपी प्राण चलाता है।।2।।

(93)

37 ऋषिः-य.प.। दे.-इन्द्रागी।

741 सो अग एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रवोतः।
यत सीमागश्चकृमा तत सु मुक तदर्यमादितिः शिश्रुथन्तु।।7।।

हे (अग्रे) अग्रे। (सः एना मनसा समिद्धः) वह तू उत्तम मन से प्रदीप्त होकर (मिश्रं इन्द्र वरुणं च वोचेः। मित्र इन्द्र और वरुण के पास जाकर कह कि हमने (यत् आगः सी चकृम) जो अपराध किया है (तत सु मृक) उससे हमें बचाकर सुखी करो तथा (तत अर्यमा अदितिः शिश्रथन्तु) उसको अर्यमा अदिति हमसे पृथक करें। उस अपराध को हमसे दूर करें। हम निर्दोष हों।।7।।

हम अग्नि देव की नित्य पूजा करें और मित्र इन्द्र, वरुण की भी स्तुति करें ताकि हमने जो अपराध किया हो उससे हम मुक्त होकर सुखी हों, अर्यमा और अदिति भी हमें अपराधों से मुक्त करें। हम निर्दोष होकर व्यवहार करें।।7।।

(95)

38 ऋषिः-य.प.। दे.-सरस्वती।

758 उत स्या नः सरस्वती जुष्याणो-प
श्रवत सुमगा यज्ञे अस्मिन।
मितज्ञुमि नमस्यैं रियाना शया युजा
चिदुन्तरा सखिभ्येः।

(उत जुष्याणा सुभगा स्मा सरस्वती) और प्रसन्न हुई वह भाग्यवाणी सरस्वती (नः अस्मिन यज्ञे उप श्रवत) हमारे इस यज्ञ में हमारी की हुई स्तुति सुनें। (मितज्ञनिः नमस्यैः इयाना) घुटने टेक कर नमन करने वाले उपासक उस नदी के पास जाते हैं। (युजा शयाचित) वह नदी योग्य धन से युक्त है और (सखिभ्यः उत्तरा) मित्रभाव से रहने वाले के लिए उच्चतर अवस्था देती है।।4।।

सरस्वती नदी के तीर पर उपासना करने वाले लोग घुटने टेककर नमस्कार करते हुए स्तुति–प्रार्थना और उपासना करते हैं,

सरस्वती नदी उत्तम भाग्य देने वाली है। योग्य धन धान्य होने से परस्पर प्रेमभाव से रहने वालों के लिए उच्चतर अवस्था देने वाली यह नदी है।।4।।

(96)

39 ऋषिः-य.प.। छ. प्रस्तारपङ्क्तिः।

793 भद्रमिद भद्रा कृष्णव्रत सरस्व
-त्यकवारी चेताति वाजिनीवती।
एणाना जमदगिवत स्तुवाना च वसिष्ठवत।।3।।

(भद्रा सरस्वती भद्रं इत कृणवत) कल्याण करने वाली सरस्वती निःसंदेह कल्याण करती है तथा (अकवारी वाजिनीवती चेतति) सीधी जाने वाली और अन्न देने वाली यह सरस्वती हमारे अन्दर चेतना उत्तम करें, प्रज्ञा बढ़ावे। (जमदगिवत गृणाना) जमदगि ऋषि के द्वारा प्रशंसित होने के समान (वसिष्ठवत च स्तुवाना) वसिष्ठ के योग्य स्तुति से प्रशंसित हो।।3।।

सरस्वती सबका कल्याण करने वाली है। वह सबका कल्याण करें। यह एक नदी भी है और विद्या भी। जिस तरह स0 नदी अन्नादि से सबका कल्याण करती है, उसी तरह विद्या भी सब मानवों का कल्याण करती है। स0 सीधा उभाति मार्ग बताती है। वह मनुष्यों को टेढ़ी चाल चलने से रोकती है।।3।।

सोमरस दिव्य अन्न है और चावल पार्थिव अन्न है। वे दोनों अन्न सरस्वती नदी पर होते हैं और यज्ञ करने वालों को प्राप्त होते हैं।।2।।

80 ऋषिः-य.प.। छ-गायत्री।

765 ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः।

तेमिनोऽविता भवः।।5।।

हे (सरस्वः) समुद्र देवः (ये ते ऊर्मयः) जो तुम्हारी लहरियाँ (मधुमत्तः घृतश्च्युतः) मीठी और घी वाली है, (तेमिः नः आवता भव) उनसे हमारे संरक्षक बनो।।5।।

सरस्वान का अर्थ समुद्र और महाज्ञानी दोनों ही हैं। विद्यां की नदियाँ उस महाज्ञानी के हृदय में आकर मिलती है। उसके हृदय में जो अनियां है वह अर्निया मधुरिमा को प्रकट करने वाली और घी के समान स्नेह को फैलाने वाली होती हैं। विद्या के समुद्र महाज्ञानी के ये ही कर्तव्य हैं।।5।।

(97)

41 ऋषि-य.प.। दे. इन्द्राब्रह्मणस्पती। छ-त्रिष्टुप।

769 तनु ज्येष्ठं नमसा हुर्विर्मिः सुशेवब्रह्मणस्पतिगृणीये।
इन्द्र श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो
देवकृतस्यराजा।।3।।

(तं ज्येष्ठं सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं) उस श्रेष्ठ सेवा करने योग्य ज्ञान पति को (हविभिः नमसा मृणीषे) हवनों और नमस्कारों के साथ स्तुति गाता हूँ। (यति इन्द्र दैव्यः श्लोकः सिष्यक्तु) महान इन्द्र की यह दिव्य श्लोक –मंत्र सेवा करें। गुणगान करे। (यः देवकृतस्य ब्रक्षण राजा) यह इन्द्र देव द्वारा किए स्तोत्र का राजा है, अधिकारी है।।6।।

मैं सेवा करने योग्य ब्रह्मणस्पति देव की नमस्कारपूर्वक स्तुति करता हूँ, ये दिव्य मंत्र महान इन्द्र की स्तुति करें। यह इन्द्र देव के द्वारा किए गए स्तोत्र का राजा है, अधिकारी है। इस मंत्र में वेद मंत्रों को देवकृत बताया गया है। मुख्य देव वही परमात्मा है,

अतः उसी से इन मंत्रों की रचना हुई है, यह ज्ञात होता है।।3।।

82 ऋषिः-यं.प.। दे.-वृहस्पतिः। य.प.

771 तमा नो अर्कम मृताय जुष्ट-मिमे घासुरमृतासः पुराजाः।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां वृहस्पति मनर्वाण हुवेम।।5।।

(तं अमृताय जुष्टं अर्कं) उस अमरत्व के लिए सेवन करने योग्य पूजनीय अन्न को (इमे पुराजाः अमृतासः) ये प्राचीन काला से प्रसिद्ध अमर देव (नः आ घासुः) हमें देवों। हम (शुचिकन्दं पस्त्यानां यजतं) शुद्धता के लिए प्रशंसित गृहस्थियों के लिए पूजनीय (अनर्वाण बृहस्पति हुवेन) पीछे न हरने वाले बृहस्पति की स्तुति गाते हैं।।5।।

देवगण हमें सदा ऐसा अन्न दें, कि जिसका सेवन करके हम अमरत्व प्राप्त करें। योग्य और श्रेष्ठ अन्न खाकर मृत्यु को भी दूर किया जा सकता है। हम अपने मन को पवित्र करने के लिए कभी पीछे न हरने वाले ज्ञानी के समान आचरण करें।।5।।

(99)

43 ऋषिः-य.प.। दे. विष्णु। य.प.।

790 वषट् ते विष्णवास आकृणोमि
तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे
यूयं पात स्वास्तिभिः सदा नः।।7।।

हे (विष्णो) विष्णो। (ते आसः वषट आ कृणोमि) तुम्हारे लिए मुख से मैंने कष्ट किया है। वषट बोल कर अन्न का अर्पण किया है। हेः (शिपिविष्ट) तेज वाले विष्णुः (तत् मे हव्यं जुषस्व/उस मेरे

दिए हविग्यान्न का सेवन करो। (मे सुष्टुतयः त्वा वर्धन्तु) मेरी उत्तम स्तुतियाँ तुम्हारे यश का संवर्धन करें। (यूयं नः स्वास्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणमय साधनों से सदा संरक्षण करो।।7।।

हे विष्णोः मैंने स्तुति करके तुम्हारे लिए यह अन समर्पित किया है। हे तेजस्वी विष्णोः तुम मेरे दिए गए हवि को स्वीकार करो। मेरी उत्तम स्तुतियाँ तुम्हारे यश को बढ़ावें। तुम सब देवों के साथ मिलकर हमारी रक्षा करो।।7।।

(100)

44 ऋषि-य.पं.

796 किमित ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत
प्र यत ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि।
भा वर्षो अस्मदय गूह एतद्
यदन्यरूपः समिथे बभूय।।6।।

हे विष्णोः (किं इत ते परिचक्ष्यं भूत) क्या यह तुम्हारा नाम त्यागने योग्य हुआ है? (यत प्रवबक्षे शिपिविष्टः अस्मि) जो तुम ऐसा कहते हो कि मैं शिपिविष्ट हूँ। (एतत वर्षः अस्मत मा अप गूहः) यह अपना रूप हमसे दूर न करो (यत् अन्यरूपः समिधे बभूय) जो तुम युद्ध के समय अन्य–2 रूप धारण करते हो। अकति हमारे सामने तुम्हारा एक ही दिव्य रूप रहे।।6।।

विष्णु के तेज का वर्णन करना असंभव है, क्योंकि वह अनेकों रूपों को धारण करता है। पर जो उसका आनन्ददायक रूप है वह हमारी नजरों से दूर न हो।।6।।

45 ऋषिः-य.प.। देवता-इन्द्रः। छन्दः-त्रिष्टुपः।

836 एत उत्ये पतयत्ति श्रृयातव
इन्द्र दिप्सन्ति दिप्सवोऽदोभ्यम्।
शिशीते शकः पिशुनेभ्यो वधं
नूनं सृजदशनि यातुमद्यः।।20।।

(त्ये एते श्वयातवः उ पतयन्ति) वे ये राक्षस कुत्तों से काटे जाकर गिरते हैं। (ये दिप्सयः अदाभ्यं इन्द्र दिप्सत्ति) जो मारने की इच्छा से अदम्य इन्द्र की भी हिंसा करना चाहते हैं। (शकः पिशुनेभ्यः वधं शिशीते) इन्द्र उन कपटियों के वध करने लिए भी अपने शस्त्र को तीक्ष्ण करता है और वह (यातुभदयः अशनि नूनं रच्जत्) दुष्ट राक्षसों पर निश्चय से वज्र फेंकता है।।20।।

हे इन्द्रः यज्ञ करने वालों को समृद्ध करो, पर जो दुष्ट राक्षस हों उनका चारों दिशाओं से संहार करो।।19।।

जो दुष्ट कुत्तों के समान मनुष्यों पर हमला करते हैं, जो मारने की इच्छा पाने होकर शक्तिशाली को भी मारना चाहते हैं, इन्द्र उन कपटी शत्रुओं का वध करे और उन दुष्ट राक्षसों को नष्ट करें।।20।।

46 ऋषिः य.प.

838 उलूकयातु शु शुलूकयातु जहि श्वयातुभुत कोकपातुम।
सुपर्णयातुमुत गृप्प्रयातु दूष्टदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र।।22।।

(उलूकयातुं) उल्लू–मोह (शुभुलूकयातुं) मेडियेकोफी (खयातुं) कुत्ते–मत्सहग्रस्त, (उतकोकयातुं) कोककामी (सुपर्णयातु) गरुड–गविष्ट (उतमृद्रयातु) गीध के लोभी जो राक्षस हैं उनको

(जहि) मारो। (दृष्टाइव प्रमृण) पत्थर से मारते हैं वैसे मारो और हे इन्द्रः हमारी रक्षा करो।।22।।

47 ऋषि-य.प.। दे.-(राक्षोघ्नं) इन्द्रासोमो। छ. मनुष्टुपः।

841 प्रति यश्व वि चक्रचे-न्द्रश्च सोम जागृतम्।
रक्षोभ्यो वधर्मस्यत-मशनि यातुमुद्यः।।25।।

हे (सोम) सोमः लू और (इन्द्रः च) इत्द (प्रति चश्च) प्रत्येक शंऊस को देखो। (जागृत) जगते रहा (रक्षोभ्यः वधं, अस्मतं) राक्षसों पर वध करने वाले अस्म फेकों और (यातुभदयः अशनि) यातना देने वाले पर व्रज फेंको और उनका नाश करो।।25।।

हे सोमः तू और इन्द्र दोनों मिलकर राक्षसों पर निगरानी रखो। तुम दोनों सदा जागते रहकर हमारी रक्षा करो और दुष्ट राक्षसों पर अपना प्रहार (शस्माओं का) करने उनका संहार करो।।25।।

सप्तम मण्डल—सुभाषित

(ऋ.7 |33) 143—सूर्यस्य ज्योतिः समुद्रस्य गंभीरः, वातस्य प्रजवः—सूर्य की ज्योति, समुद्र की गंभीरता वायु का वेग ये शक्तियाँ हैं। मनुष्य में तेज गंभीरता और वेग हो।

147 शुक्रा मनीफा देवी—बल बढाने वाली बुद्धि देवी है।

152 देवत्रा वाचं प्रकृबुध्यं—दिव्य भावों को प्रकट करने वाली वाणी बोलो।

155 अस्य ऋतायोः यज्ञः मा स्त्रिधत—सत्य के लिए जिसने अपनी आयु दी है उसका यज्ञ नष्ट न हो।

(ऋ. 7 |62) 210—सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिम—सूर्य मनुष्यों के जन्मवृत्त जानता है।

(ऋ. 7 |82) 244—विश्वे देवासः ओजः बलं संदधुः—सब देव ओज और धन धारण करते हैं।

245 तं मर्तें न अंहः, न दुरितानि, न तपः नशते यस्य अध्वरं गच्छयः—उस मनुष्य को पाप दुष्कृत्य, संताप कष्ट नहीं देते, जिसके यज्ञ में देव जाते हैं।

(ऋ 7 |94) 266—धिया धेनाः ऐरयामः—बुद्धि से वाणी को हम प्रेरित करते हैं।

(ऋ. 7 |95) 269:—एका सरस्वती ऋचेतत—यह एक ही विद्या देवी चेतना उत्पन्न करती है।

(ऋ. 7 |91) 275:—भील हुषे अनागाः भवम—सुख देने वाले उस प्रभु के सामने हम निष्पाप होकर रहें।

832 किसी की व्यर्थ निंदा नहीं करनी चाहिए, ऐसी निंदा करना बहुत बुरा है, ऐसा निंदक अधम कहलाता है और नीच

अवस्था को पहुँचता है, इसलिए कोई मनुष्य किसी की निंदा न करे। निदां करने से जिसकी वह निंदा करता है उसका कुछ भी बिगड़ता नहीं पर उसकी वाणी प्रथम बिगड़ जाती है और पश्चात मन विगड़ता है और इस कारण उसकी अवस्था निकृष्ट बनती है, इसलिए निंदा करना किसी को भी योग्य नहीं है।

ईश्वर–504 |1–एष वृचक्षाः सूर्यः उमेज्यन् उदेति–वह मनुष्यों का निरीक्षक सूर्य दोनों लोकों में उदय होता है, यह सबका निरीक्षण करता है।

504 |2–सः विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः–वह ईश्वर स्थावर जंगम का रक्षक है।

504 |3–मत्येषु ऋजु वृजिना पश्यन्–वह ईश्वर मानवों में सरण और कुटिल को देखता है।

अष्टम मण्डल

सूक्त–103 सूक्त। यंत्र–1716

1. **ऋषिः–प्रगाथो (घोरः) काण्वः। दे.–इन्द्रः। छ.–प्रगाथः = (विषभा बृहती, समा सतोबृहती)**

1 **मा चिदन्यद् वि शंसत् सखायो मा रिप्पण्यत।**
इन्द्र मित स्तोता वृषणं सचा सुते मुहरुक्था च शंसत।।1।।

हे (सखायः) मित्रोः (अन्यत चित मा शंसत) तुम किसी दूसरे देव की स्तुति मत करो। किसी दूसरे देव की स्तुति करके (मा रिप्पण्यत) दुःखी मत होओ। (सुते) सोमरस के निचोड़े जाने वाले यज्ञ में (वृषणं इन्द्र इत) बलशाली इन्द्र की ही (सचा स्त्रोत) एक साथ मिलकर स्तुति करो, (च) और (उक्था) इन्द्र के स्तोत्रों को (मुहुः शंसत) बार–2 बोलो।।1।।

1. अन्यत चित मा शंसत, मा रिप्पण्यत–ऐश्वर्यशाली परमात्मा को छोड़कर और किसी देव की स्तुति मत करो और दुःखी मत होओ।

ऐश्वर्यशाली परमात्मा को छोड़कर अन्य देव की उपासना करने से मनुष्य संकट में पड़कर दुःखी होता है। वही परमात्मा संकटों से उपासक को उबारने वाला है, अतः हर यज्ञ में उसी एक परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए और बार–2 स्तुति करनी चाहिए।।1।।

2. **ऋषिः–मेधातिकि–मेध्यातिथी काण्वौ। दे. इन्द्र। छन्द–बृहती।**

10 आ स्वश्द्य संवर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम।

इन्द्रं धेनुं सुदुषामन्यामिण–मुरुधारामरंकृतम्।।10।।

(अद्य इन्द्रं आ) आज इन्द्र का सत्कार करने के लिए (सर्वदुधां) हर तरह की कामनाओं को दुहने वाली (गायत्रवेपस) गायत्री रूपी छन्द से शरीरवाली, (सुदुघां) सरलता से फण देने वाली (अन्यां) सब गुणों से युक्त (इप्पं) अन्न प्रदान करने वाली (उरुधारां) अनेकों धाराओं वाली तथा (अलंकृता) अलंकार से युक्त (धेनुं हुवे) स्तुति रूपी वाणी को बोलता हूँ।।10।।

1. सब र्दुधा, सुदुधा अन्या अलंकृता–वाणी कामनाओं को दुहने वाली, उत्तम फल देने वाली गुणों से युक्त तथा उत्तम अक्षरों से युक्त हो।

सब कामनाओं को देने वाली, गायत्री छंदवाणी सरलता से उत्तम फल देने वाली, सब गुणों से युक्त अन्न प्रदान करने वाली तथा उत्तम अक्षरों से युक्त वेदवाणी से स्तुति करने पर इन्द्र–प्रभु प्रसन्न होते हैं।।10।।

3 ऋषिः–य.प.

14 अमंन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन्।

सकृत सु तै महता शूर राघसाऽनु स्तोमेमुदीमहि।।14।।

हे (वृत्रहन्) वृत्र को मारने वाले इन्द्रः हम (अनाशवः) शीघ्रता न करते हुए (अनुग्रासः) उग्र न होते हुए (अमन्महि) तेरी स्तुति करें। हे (शूर) शूर इन्द्रः (ते) तेरे लिए हम (सकृत) एक बार के लिए ही सही, पर (महता राघसा) अत्यधिक धन से (सु स्तोत्रं अनु मुदीमहि) उत्तम यज्ञ को सम्पन्न करें।।14।।

1. अनाशवः अनुग्रासः अमन्महि–शीघ्रता न करते हुए तथा उग्र न होते हुए हम प्रभु की स्तुति करें।

प्रभु की स्तुति करते समय मनुष्य शीघ्रता न करें, और न अपने मन में क्रोध, द्वेष आदि दुष्ट भावनाओं को ही उत्पन्न होने दे। सदा प्रेमपूर्वक ही प्रभु की स्तुति करें। मनुष्य अपने जीवन में एक बार ही सही, पर बहुत साधन खर्च करके यज्ञ करें और उसे प्रभु को समर्पित कर दे।।14।।

4. ऋषि–आङ्गिरसी शश्वती ऋषिका। दे. आसङ्गः छ. त्रिष्टुप्।

34 अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्ता–दनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः।
शाश्वती नार्यमिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं विभर्षि।।34।।

(शश्वती नारी) ज्ञान से युक्त स्मी (अभिन्वक्ष्य आह) सब कुछ देखकर कहती है कि (अस्य) इस इन्द्र का (स्थूरं पुस्तात्ददृशे) स्थूपरूप पहले दिखाई देता है, पर इस स्थूल रूप के पीछे (अनस्थः ऊरुः अपरम्बमाणः) अस्थि से रहित, विस्तृत और सर्वत्र व्याप्त रूप है। हे (अर्थ) श्रेष्ठ इन्द्रः तू ही (सुमद्रं) उत्तम कल्याणकारी (भोजनं बिमर्षि) भोजन धारण करता है।।34।।

ज्ञान से युक्त स्त्री सूक्ष्म दृष्टि से प्रभु के रूप को जानकर कहती है कि आँखों के सामने जो संसार है, वह प्रभु का स्थूल रूप है, पर इस संसार के पीछे जो प्रभु का सूक्ष्मरूप है वह पंचतत्त्व से परे, विस्तृत और सर्व व्यापक है। वही सूक्ष्म रूप प्रभु सारे संसार के लिए भोजनाति प्रदान करता है।।34।।

5 ऋषिः-मेधातिथिः काण्वः। दे.-इन्द्रः। छ.-गायत्री।

51 न धेंमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ।
तवेद स्तोमं चिकेत।।17।।

हे (वज्रिन) वज्रधारी इन्द्रः (अपसः न विष्टौ) कार्य को तथा स्तुति करने के समय (अन्यत न ध ई आपपन) और दूसरा कुछ भी

काम न करूं, मैं केवल (तव इत स्तोत्र ऊं चकेत) तेरे ही स्तोत्र को करना जानता हूँ।।17।।

प्रभु की स्तुति रूप कार्य करते समय मनुष्य और कोई काम न करे, अपितु उस समय वह केवल प्रभु की स्तुति ही करे।।17।।

6 ऋषिः-य.प.।

73 य ऋते चिद शास्यदेभ्यो दात सखा नृभ्यः शचीवान्
ये अस्मिन काममश्रियन।।39।।

(पदेभ्यः ऋते चित) पैर आदि अवयवों के न होने पर भी (यः संखा शचीवान) जिस मित्र और शक्तिशाली इन्द्र ने (नृभ्यः गाः दात) मनुष्यों के लिए वाणियाँ प्रदान की। (ये अस्मिन कामं अश्रियन) जो मनुष्य इस इन्द्र में ही अपनी सारी कामनाएं स्थापना करते हैं।।39।।

ऐश्वर्यशाली प्रभु मनुष्यों का मित्र के समान हित करने वाला है। निराकार होने के कारण पैर आदि अवयवों से रहित होने पर भी उसने मनुष्यों को वाणी प्रदान की, अतः ज्ञानीजन अपने मनोरथों की पूर्ति के लिए उसी प्रभु की प्रार्थना करते हैं।।39।।

(3)

7 ऋषिः-य.प. छ-बृहती।

100 आत्मा पितु स्तनूर्वास ओजोदा अभ्यंजनम्।
तुरीयमिद रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं
दातारमब्रवम्।।24।।

यह (आत्मा) आत्मा (पितुः तनूः) अपने पिता परमात्मा का सच्चा पुत्र है, वह (वासः) निवास कराने वाला (ओजोदा) ओज और तज को देने वाला (अभ्यं जनं) प्रकट होने वाला है। ऐसे

(तुरीयं) अत्यत्त श्रेष्ठ (रोहितस्य दातारं) तेज को देने वाले (भोजं) बल देने वाले (पाक स्थानानं) पवित्र बलवाले आत्मा की मैं (अधवम्) स्तुति करता हूँ।

यह मनुष्य का आत्मा परमात्मा का सच्चा पुत्र है। यह जब तक शरीर में रहता है, तभी तक मनुष्य जीवित रहता है। इसलिए मनुष्य को निवास कराने वाला यही आत्मा है, यह शरीर में रहकर शरीर को ओज और तेज प्रदान करता है, यह शरीर के माध्यम से प्रकट होता है। यह रोहित लोहित अर्थात् रक्त आदि धातुओं का उत्पादक है, और पवित्र बल देने वाला है।।24।।

(5)

8 ऋषि-य.प.। दे.-अश्विनौ। छ-गायत्री।

156 हिरण्ययेन रथैन द्रवत्याणिमिरश्वैः।
धीजवना नासत्या।।35।।

हे (धी जवना नासत्या) बुद्धि के तुल्य वेग वाले सत्य पूर्ण अश्वि देवोः (द्रवत पाणिभिः अश्वैः) दौड़ते हुए घोड़ों से और (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णमय रथ से आओ।।35।।

आश्विदेवों के रथ मन के समान शीघ्र गति वाले हैं। ऐसे सुनहरे और वेगवान रथों में बैठकर ये देव सर्वत्र संचार करते हैं।।35।।

(4)

9 ऋषिः-देवातिथिः काण्वः। दे.-इन्द्र। छ. पुरउष्विक्।

121 वृक्षाश्रिन्मे अभिपित्वे अशरणुः।
गां भंजन्त मेहनाऽश्वं भजन्तमेहना।।21।।

(ये अभि–पित्वे) मेरे द्वारा गौरूपी धन को प्राप्त कर लिए जाने पर (वृक्षाः चित् अदारणुः) वृक्ष भी चिल्लाने लगे कि इन्होंने (मेहना गां भजन्त) प्रशंसनीय गायों को प्राप्त कर दिया। इन्होंने (मेहना अश्वं भजन्त) प्रशंसनीय घोड़ों को प्राप्त कर लिया।।21।।

जब ऋषि या ज्ञानी सज्जनं पुरुष उत्तम धन प्राप्त करते हैं, तब सभी को यहाँ तक कि वृक्ष आदि स्थावरों को भी प्रसन्नता होती है, क्योंकि वे जानते हैं कि ज्ञानियों को धन मिलने पर वे उससे दूसरों को सुख ही देंगे।।21।।

(6)

10 ऋषि-वत्सः काण्वः। दे.-इन्द्रः। छ.-गायत्री।

168 गुहा सतीरूध स्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः।

कण्वा ऋतस्य धारया।।8।।

(गुहा सतीः) बुद्धि में रहने वाली (यत् धीतयः) स्तुतियाँ (उप प्र शोचन्त) प्रकाशित होती हैं, उनको (कण्वाः) ज्ञानी जन (ऋतस्य धारया) यज्ञ को धारण करने वाली (वाणी) से बोलते हैं।।8।।

1. शोचत्त–प्रदीप्त होती है, प्रकाशित होती है। शुच दीप्तौ।
2. कण्वाः–कण्व ऋषि के प्रभु, ज्ञानी, कण्व इति मेधावि नाम। (नियं, 3।15)
3. गुहा सतीः धीतुयः–अन्तःकरण में रहने वाली भक्ति की स्तुतियाँ।

प्रभु को की जाने वाली स्तुतियाँ भक्त के अन्तःकरण में रहती है। पर वे भक्त के अन्तःकरण को सदा पवित्र लिए रहती हैं और उसके अन्तःकरण से ही वे स्तुतियाँ सदा प्रकट होती रहती है। ज्ञानी जन इस प्रकार अपने अन्तःकरण में स्थित स्तुतियों को

अपनी वाणी के द्वारा प्रकट किया करते हैं।।8।।

11 ऋषि-य.प.

171 अहं प्रत्नेन मन्मता गिरः शुम्भमि कण्ववत्।
येनेन्द्रः शुष्मनित दधे।।11।।

(कण्ववत अहं) ज्ञानी के समान मैं (प्रत्येन मन्मन) प्राचीन स्तोत्र से अपने (गिरः) वाणी को (शुम्भानि) अलंकृत करता हूँ। (येन इन्द्रः) जिससे इन्द्र (शुण्य इत् दधे) बल को धारण करता है।।11।।

1. मन्मनागिरः शुम्मापि–परमात्मा की स्तुति से वाणी को उत्तम सुशोभित करता हूँ।

परमात्मा की स्तुति करने से मनुष्य की वाणी उत्तम और पवित्र होती है और मनुष्य द्वारा की गई स्तुति से प्रभु का महत्व सब ओर प्रकाशित होता है।।11।।

(7)

12 ऋषिः-पुनर्वत्सः काण्वः। दे.-मरुतः। छ. गायत्रे।

214 युपमाँ उ नक्तभूतये युष्मान दिवा हवामहे।
युष्मान् प्रयत्यध्वरे।।6।।

हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (युष्मान उ) तुम्हें ही हम (नल) शमी के समय (हवामहे) बुलाते हैं, (दिवा) दिन की बेला में भी (युष्मान्) तुम्हें ही हम पुकारते हैं (प्रर्यात अध्वरे) प्रारमित हिंसा रहित कर्मों के समय भी हम (युष्मान्) तुम्हीं को बुलाते हैं।।6।।

कार्य करते समय, दिन एवं रात्रि की बेला में अपने संरक्षण के लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए।।6।।

14 ऋषि-य.प.

244 अग्निर्हि जानि पूर्व्य-श्छन्दो न सूरो अर्चिषा।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे।।36।।

(अग्निः हि) अग्नि सचमुच (अर्चिषा) तेज से (छन्दः ढका हुआ है और (सूरः न) सूर्य के समान वह (पूर्ण्यःजान) पहले प्रकट हुआ तथा पश्चात (ते भानुभिः) वे वीर मरुत अपने तेजों से (वि तस्थिरे) स्थिर हो गए।।36।।

सूर्य के समान ही अग्नि अपने तेज से प्रकाशमान होता है और यज्ञ में पहले–2 व्यक्त हो जाता है। पश्चात् वीर मरुतो का समुद्राय अपने–2 स्थान पर आ बैठ जाता है।।36।।

(अध्यात्म)–व्यक्ति के शरीर में भी प्रथम उष्णता संचारित हुआ करती है और पश्चात प्राणों का आगमन होता है। ध्यान रहे कि व्यक्ति में प्राण मरुत् ही है।।36।।

(8)

15 ऋषिः-सध्वंसः काण्वः। दे.-आश्विनौ।छ.-मनुष्टुप्।

263 आ नो गत्तं मयोभुवाऽश्विना शभुवा युवम्।
यो वां विपन्यू धीतिभि-गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत।।19।।

हे (विपन्यू) प्रशंसनीय (आश्विना) आश्विदेवो (युवं नः आ गत्तं) तुम दोनों हमारे समीप आओ; (यः वत्सः) जो वह वत्स ऋषि (मयो भुवा शंभुवा वां) सुखदायक एवं शान्तिदायक तुम्हें (धीतिभीः गीर्भिः अवीवृधत्) कर्मों से तथा आषणों से प्रशंसित करता है।।19।।

ज्ञानी तथा सबसे स्नेह करने वाले हम, हे देवो! तुम्हें बुलाते हैं, अतः तुम आकर हमें सुख और शान्ति प्रदान करो।।19।।

16 **ऋषिः-य.प.।**

267 **त्रीणि पदान्यश्विनो-शविः सान्ति गुहा परः।**
कवी ऋतस्य पत्ममि-रर्वारजीवेभ्यस्परि।।23।।

आश्विदेवों के (गुहा) गुहा में बचे हुए (त्रीणि पदानि) तीन पद (परः आविः सन्ति) पर के स्थान में प्रकट हुए हैं (अतस्य पत्मभिः) ऋत के मार्गों से (कवी) विद्वान आश्विदेव (जीवेभ्यः अर्वाक) जीवों के लिए अभिमुख होकर (परि) ऊपर से आते हैं।।23।।

आश्विदेवों के तीन पद आँखों से ओझल हरते हैं, और उनका चौथा पद सत्य के मार्ग से जीवों के सामने प्रकट होता है। विराट परमात्मा के तीन पद अप्रकट ही रहते हैं और चौथे पद से वह इस संसार के रूप में प्रकट होतजा है।।23।।

(12)

17 **ऋषिः-पर्वतः काण्वः। दे.-इन्द्रः। छ-उष्णिक।**

315 **गर्मो यज्ञस्य देवयुः ऋतुं पुनीत आनुपाक।**
स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत्।।11।।

(यज्ञस्य गर्मः) यज्ञ को उत्पन्न करने वाला तथा (देवयुः) देवों की प्राप्ति की इच्छा करने वाला ऋत्विज् (अनुष्यक) निरन्तर (अपने) (ऋतुं) कर्म को (पुनीते) पवित्र रीति से करता रहता है, तथा (इन्द्रस्य स्तोत्रैः वावृधे) इन्द्र की स्तुति से वह बढ़ता है तथा (मिमीते इत) (इन्द्र के) गुणों का वर्णन करता है।।11।।

देवों की प्राप्ती का कामना करने वाला ऋत्विज् निरन्तर अपने कर्म को पवित्र रीति से करता है। अच्छे गुणों को प्राप्त करने वाले मनुष्य को अपना कर्म पवित्र हो ऐसा करना चालिए। वह इन्द्र की स्तुति से बढ़ता है, परमात्मा की स्तुति से मनुष्य की

तुभाति होती है।।11।।

18 ऋषिः-य.प.।

331 यदाते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे।

आदित ते हर्यता हरी ववक्षतुः।।27।।

हे इन्द्रः (यदा ते विष्णुः) जब तुम्हारे विष्णु ने (ओजस्य) बल से (त्रीणि पदा) तीन पाँवों से (विचक्रमे) विक्रय किया (आत् इत) तब ही (हर्यता हरी) दो तेजस्वी घोड़े (ते) तुम्हें (ववक्षतुः) होकर ले गए।।27।।

1. विष्णु उपेन्द्र है। इन्द्र देवेन्द्र है। विष्णु सूर्य है।

सूर्य ने अपने बल से तीन पाँवों से आक्रमण किया, सूर्य मध्यान्ह समय में ऊपर चढ़ गया।।27।।

(13)

19 ऋषिः-नारदः काण्डः। (दे-इन्द्रः। छन्दः-उष्णिाष्य।

337 सुवीर्य स्वख्यं सुगल्यमिन्द्र दद्धि नः।

होते व पूर्वचिन्तय प्राध्वरे।।33।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः (नः) हमें (सु–वीर्य, सु–अश्ण्यं, सु–गव्यं) उत्तम बल, उत्तम घोड़े और उत्तम गायों वाला धन (दद्धि) दो मैं (अध्वरे) यज्ञ में (होता हव) होता के समान (पूर्व चित्तये) सबसे प्रथम ज्ञानवान् होने के लिए तुम्हारी (प्र) उत्तम स्तुति करता हूँ।।33।।

1. वः सुवीर्य स्वश्व्य सुगव्यं दद्धि–हमें उत्तम पराक्रम करने की शक्ति, उत्तम घोड़े और उत्तम गायें दे दो।

(14)

20 **ऋषिः-गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। दे.-इन्द्रः। छ.-गायत्री।**

315 **यज्ञ इन्द्रमवर्थयद यद भूमि व्यवर्तयत।**

चक्राण ओपशं दिवि।।5।।

इन्द्र ने (दिवि ओपशं चक्राणः) द्युलोक में विश्राम स्थान बनाकर (यत्) जब (भूमिं व्यवर्तयत) भूमि को फैलाया, तब (यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्) यज्ञनै इन्द्र के यश को बढ़ाया।।5।। ओपश–विश्राम स्थान गद्वीत किया सहारा स्वम्भा सर्वाशक्तिमान प्रभु ने जब द्युलोक और पृथ्वी लोक का विस्वार किया, तब पृथ्वी पर यज्ञ होने लगे और उस यज्ञ में प्रभु की स्तुति गाई जाने लगी।।5।।

(16)

20 **ऋषिः-इरिम्बिठिः काण्वः। दे. इन्द्रः। छ. गायत्री।**

400 **यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वामि च श्रवस्या।**

अपामवो न समुद्रे।।2।।

(यस्मिन) जिस इन्द्र में (विश्वानि उक्यानि श्रवस्या च) सम्पूर्ण स्तोत्र और यश (समुद्र अपां भवः न) समुद्र में जब तरंग के समान (रण्यन्ति) शोभित होते हैं।।2।।

जिस तरह समुद्र में उठने वाली लहरें समुद्र में से ही उठती हैं और उसी में लीन भी हो जाती हैं उसी तरह सभी स्तोत्र उस इन्द्र में से उठते हैं और उसी में विलीन भी हो जाते हैं।।2।।

22 **ऋषिः-य.प.।**

405 **इन्द्रों ब्रह्मेन्द्र ऋषि-रिन्द्रः पुरू परुहूतः।**

महान् महीभिः शचीभिः।।7।।

(इन्द्रः ब्रह्मा) इन्द्र ज्ञानी है, (इन्द्रः ऋषिः) इन्द्र सर्व दृष्टा है (इन्द्रः पुरू पुयहूतः) इन्द्र बहुतों द्वारा साहायार्थ बुलाया जाता है तथा (महीभिः शचीभि महान्) अपनी बड़ी–2 शक्तियों से वह महान है।।7।। सत्वं–सत्ता, तत्त्व, सत्त्वगुण, प्राण, चैतन्यता, शुक्ति दृढ़ता, उत्साह, आत्मान्द्र शासन, शत्रु को दुःख पहुचाने वाला, शत्रूणां अवसादयिता इति सायणः।

इन्द्र ज्ञानी है, वह सर्वज्ञ और सब कुछ देखने वाला है, इसीलिए वह सबके द्वारा बुलाया जाता है। यह अपनी शक्तियों के कारण ही महान है। कोई भी मनुष्य अपनी ही शक्ति के कारण महान बन सकता है। दूसरों की शक्ति के आधार पर महान बनना असंभव है।।7।।

23 ऋषिः-य.प.।

407 तमर्केभिस्तं सामभि-स्तं गायत्रैश्चर्षणयः।

इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः।।9।।

(चर्षणयः क्षितयः) ज्ञानी मनुष्य (अर्केभिः साममिः गायत्रैः च) ऋचा, साम और गायत्री छंदम मंत्रों से (तं–3 इन्द्रं अभि–वर्धन्ति। उस इन्द्र के यश को चारों ओर बढ़ाते हैं।।9।।

ज्ञान मनुष्य अनेक छन्दों में स्तोत्रों का गान करके इस इन्द्र का उत्साह बढ़ाते हैं।।9।।

(18)

24 ऋषिः-य.प.। दे.-आदित्याः। छ.-उष्णिकः।

428 तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा।

शम यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे।।3।।

(सविता भगः वरुणः मित्राः अर्यना) सविता, भग, वरुण मित्र

और अर्यमा देव (तत् सप्रथः शर्म) उस अत्यन्त विस्तीर्ण सुख को (सुयच्छन्तु) प्रदान करें (यत् ईमहे) जिस सुख को हम चाहते हैं।।3।।

हम जिस सुख को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, उस विस्तृत सुख को हमें सभी देव प्रदान करें।।3।।

25 ऋषि-य.प.।

435 अपामीवामप स्मिध-मप संघत दुर्मतिम।

आदिव्यासो युयोतन्तरो अहसः।।10।।

हे (आदिव्यासः) आदित्य देवो। तुम हमसे (अमीवा अप) रोगों को दूर करो (स्त्रिधं अप) शत्रुओं को दूर करो (दुर्मति अप सेधत) हमसे दुष्ट बुद्धियों को दूर करो तथा (नः) हमे अहसः युमोतन) पाप से दूर करो।।10।।

हे आदित्य देवो। तुम हमारे शरीरों में रोज कीटाणुओं शत्रुओं को दूर करके हमें नीरोग करो। हमारी दुष्ट बुद्धियों को दूर करके हमें उत्तम बुद्धि दो, इस प्रकार हमें पापों से दूर करो।।10।।

26 ऋषि-य.प.।

439 समित् तमधमश्नवद दुःशस मर्त्य। रिपुम।

यो अस्मत्रा दुर्हणावा उप द्वयुः।।14।।

(यः जो मनुष्य (अस्मत्रा) हमसे (उपद्वयुः) कपट का व्यवहार करता है, तथा (दुर्हभावान) हमारी हिंसा करना चाहता है, (तं दुःशंसं रिपु मर्त्य) उस दुष्ट और शत्रु मनुष्य को (अधं इत सं अश्नवत) उसका पाप ही खा जाए।।14।।

जो मनुष्य निरपराधी और साधु पुरुष से कपट व्यवहार

करता है, या उसे मारना चाहता है उस दुष्ट को उसका पाप कर्म ही मार डालता है।।14।।

27 ऋषिः-य.प.।

442 ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः।
अति विश्वानि पुरिता पिपर्तन।।17।।

हे (वसवः) सबको वास कराने वाले देवोः (ते) वे तुम सब (भद्रेण शर्मणा) कल्याण कारक सुख –रूपी (युष्माकं नावा) तुम्हारी नाव के द्वारा (विश्वानि दुरिता अतिपिपर्तन) सम्पूर्ण दुष्कर्मों के पार उतार दो।।17।।

हे संपूर्ण दुष्ट कर्म रूपी सागर से पार लाने के लिए सुकर्म रूपी नाव ही है। उत्तम कर्म करने वाला मनुष्य एसे सागर को पार कर सकता है।।17।।

28 ऋषिः-य.प.।

444 यज्ञो ही को वो अन्तर आदित्या अस्ति मूलते।
युग्मे इद वो अपि पमसि सजात्ये।।19।।

हे (आदित्याः) आदित्यो। (हीकः) जिस यज्ञ में तुम जाना चाहते हो, वह (यज्ञः) यज्ञ (वः अत्तरः अस्ति) तुम्हारे समीप ही हो रहा है। (वः स जात्ये) तुम्हारी मित्रता में रहने वाले हम (युष्मे अपि स्मसि) तुम्हारी मित्रता में ही सदा रहे।।19।।

हे देवोः हम तुम्हारे मित्र होकर तुम्हारे लिए यज्ञ करें, तथा तुम उन यज्ञों में सदा जाते रहो, और हम भी सदा–2 तुम्हारी मित्रता रहें।।19।।

29 ऋषिः-य.प.।

447 ये विद्वि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि।

प्र सू न आयुजीवसेतिरेतन।।22।।

हे (आदित्याः) आदित्योः (ये चित् हिमनवः) जो कि हम मनुष्य (मृत्यु बंधवः स्मसि) मृत्यु के भाई बेद है तो भी (नः जीव से) हमारे दीर्घ जीवन के लिए (आयुः सु तिरेतन) हमारी आयु को अच्छी तरह दीर्घ करो।।22।।

जो कि सभी मनुष्य मृत्यु के भाई बेद हैं अत्त में मारने वाले ही हैं, तो भी प्रयत्न करके यदि देवों की कृपा प्राप्त की जाय तो आयु की दीर्घ किया जा सकता है और दीर्घमान तक जीवित रहा जा सकता है।।22।।

30 ऋषिः-सोभरिः काण्वः। दे. अग्नि। छ. प्रगाथः

(विषमा ककुप्, समा सताबृहती)

461 समिधा यो निशिती दाशददिति धाममिरस्यमर्त्यः।

विश्वेत स धीमिः सुभगो जनाँ अतिं युम्नैरुदग

इव तारिषत।।14।।

(यः मर्त्यः अदिति अस्य निशिती समिधा दाशत) जो मनुष्य अखण्डनीय इस अग्नि के लिए अतितीक्ष्ण बुद्धि से युक्त होकर समिधा प्रदान करता है (सः धार्मामः धीमिः द्युम्नः विश्वेत जनान) वह मनुष्य तेजसामथ्योस, उत्तम कर्मों के द्वारा ऐश्वर्य से समस्त जनों को (उद्रः इव तारिष्पत्) जल के समान पार कर जाता है और (सुभंगः) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त होता है।।14।।

जो बुद्धि और भक्ति से इस अमर और अखण्डनीय अग्नि की सेवा करता है, वह मनुष्य तेज, सामर्थ्य, उत्तम कर्म और ऐश्वर्यों से समस्त मनुष्यों से ऊपर उठ जाता है और इस तरह के ऐश्वर्य प्राप्त करता है।।14।।

39 ऋषिः-यथोपरि।

466 भद्रो नो अग्निशहुतो भद्रा रातिः सुमग

भद्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः।।19।।

(आहुतः अग्निः नः भद्वः) हवि से तर्पित अग्नि हमारे लिए कल्याणकारी हो। उसका दिया हुआ (रातिः भद्वा) दान हमारे लिए मंगलकारी हो। हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्यशावित अग्रेः हमारा (अध्वरः भद्वः) यज्ञ सुखप्रद हो। (उत प्रशस्तयः भद्वाः) और उत्तम स्तुतियाँ भी कल्याण करने वाली हो।।19।।

अग्नि को वेदि बनाकर उसमें प्रदीप्त करके आहुति देते हैं, वे ही सोम रस निचोड़ते हैं। उन्हीं का तू कल्याण करता है, तेरे द्वारा दिया गया धन भी उन्हीं का कल्याण करता है, यज्ञ भी उनके लिए सुख प्रद होता है और स्तुतियाँ भी उनका कल्याण करती हैं, ऐसे मनुष्य ही ऐश्वयों को जीतते हैं।।19।।

(21)

32 ऋषिः सोमरि। दे.-इन्द्रः। छ-प्रगायः (विषया ककुप समासतो बृहती)।

525 मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सरके स्वावतः।

नि षदाय सचा स्तुते।।15।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः (वे) तुम्हारे हम (स्वावतः सचये) तुम्हारी मित्रता में (मूरासः यथा) मूर्खों के समय (अमाजुरः मा) घर में ही वृद्ध न हों हम (सुते) सोमयाग में (सचा निषदान) संघटित होकर बैठेगें।।15।।

हे इन्द्रः तेरा जो ऐश्वर्य है, उस ऐश्वर्य से हम कभी दूर न हों। अतः तू हमें सदा बल से युक्त धन दे। हे इन्द्रः तुम्हारी

मित्राता में रहकर हम घर में ही निश्चिन्त बैठकर वृद्ध न हों, अपितु सदा याग करते हुए संघटित होकर बैठेंगे।।15।।

(23)

33 ऋषिः विश्वमना वैयश्वः। दे.-अग्निः। छ-उष्णिक।

568 प्रथमं जातवेदस-मग्निं यज्ञेषु पूर्ण्यम्।
प्रति स्त्रुगेति नमसा हवि उमती।।22।।

(प्रथमं जातवेदसं पूर्ण्यं अगि) देवों में प्रधान सब उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, सबसे पुरातन अग्नि को लक्ष्य करके (यज्ञेषु हविष्मती स्त्रुक नमसा प्रति एति) यज्ञों में हवि से युक्त चमचा नमस्कार पूर्वक स्तोत्रों से अग्नि के प्रति जाता है।।22।।

1. जातवेदस यज्ञेषु पूर्ण्यम—सब प्रकार के युक्त मनुष्य पूजनीय मनुष्यों में सर्व प्रथम या सर्वश्रेष्ठ होता है।

जो मनुष्य हर तरह के ज्ञान से युक्त होता है, वह सब मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार जिस राष्ट्र में सब प्रजाएं शिक्षित होती हैं, वह राष्ट्र विश्व के सब राष्ट्रों में सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ होता है।।22।।

34 ऋषि-य.पं.

576 अग्ने त्वं थशा अ-स्मा मित्रवरुणा वह।
ऋतावाना समाजा पूतदक्षसा।।30।।

हे (अगे) अगे। (त्वं यशा असि) तू देवों के मध्य में यशस्वी है। तू (ऋतावाना, समाजा पूतदक्षसा मित्रावरुणा आ वह (सत्य निष्ठ अत्यन्त तेजस्वी, पवित्र बल वाले मित्र और (वरुण को यहां ले आ।।30।।

हे अग्नेः तू सबको उत्तम धन प्रदान करता है, अतः हमें भी उत्तम–2 गायों से युक्त धन प्रदान कर तथा मित्र के समान हितकारी और पराक्रम आदि सदगुण प्रदान कर स्वयं वरुण करने योग्य श्रेष्ठ जनों को हमारे पास बुला ला।।29–30।।

(24)

35 ऋषिः विश्वमना वैयश्वः। दे. इन्द्र। छ–अनुष्टुप।

599 एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम्।
अहरहः शुन्थयुः परिपदामिव।।24।।

हे (वैयश्व) वैयश्व ऋषिः (चरणीनां नवं दशं) मनुष्यों में नौ प्राणों के अलावा दसवें प्राण रूप से रहने वाले (सु विद्वांस चर्कृत्यं) उत्तम ज्ञानी तथा पूजा के योग्य इस इन्द्र की (एव नूनं उप स्तुति) निश्चय से तू उपासना कर।।23।।

मनुष्यों के शरीर में नौ प्राणों के अलावा जीवात्मा के रूप में यह इन्द्र दसवाँ प्राण है। यह जीवात्मा उत्तम ज्ञानी है, क्योंकि इसका स्वरूप ही ज्ञान है अत एव यह पूजा के योग्य भी हैं। आत्मा की सदा पूजा करनी चाहिए।।23।।

36 ऋषिः–य.प.।

600 वेत्था हि निर्ऋतीनां वजहस्त परिवृजम।
अहरहः शुन्ध्युः परिषदमिव।।24।।

हे (बज्रहस्त) बज्र को हाथ में धारण करने वाले इन्द्रः जिस प्रकार (शुध्युः) सबको शुद्ध करने वाला सूर्य (अहरहः) प्रतिदिन (परिषदा इव) प्राणियों के स्थान से अपवित्रता दूर करता है। उसी तरह तू हे इन्द्रः (निर्ऋतीना परिबृज वेत्थ) दरिद्रता को दूर करने के उपाय को जानता है।।24।।

सूर्य के उदय होने पर उसकी किरणें जिस जगह पर जाकर मिलती है, उस जगह की अपवित्रता दूर होकर वह स्थान पवित्र हो जाता है, उसी तरह मनुष्य इन्द्र की उपासना करके अपने घर में जहाँ–2 दरिद्रता हो, वहाँ–2 से उस दरिद्रता को दूर करके अपने घर को सम्पन्न और समृद्ध बनावे।।24।।

(26)

36 ऋषिः-य.प.। दे.-अश्विनौ। छ-उष्णिक्ः

649 स्मदेतया सुधी स्र्याऽश्विना श्वेतया धिया।
वहेथे शुभयावाना।।19।।

हे (शुभ–यावाना आश्विता निष्कलंक गति वाले आश्विदेवोः (एतया सुकीर्त्या) इस अच्छी कीर्तिवापी (श्वेतयाधिया) सफेद–निष्कलंक बुद्धि से तुम दोनों (स्मत वहेये) कल्याण की ओर–जाते हो। शुभ एवं हितप्रद मार्ग के पथिक बनते हो।।19।।

अश्विदेव सदा सन्मार्ग से चलने वाले है, इसलिए इनकी गति निष्कलंक है। यह अपनी कीर्तिवाली तथा कलंकरहित बुद्धि के द्वारा लोगों को कल्याण के मार्ग में प्रेरित करते हैं।।19।।

37 ऋषिः-य.प.। दे.-वायुः। छ-उष्णिक।

653 वायो याहि शिवा दिवो वह स्वा स्वख्यम्।
वहस्व महः पृथु पक्षसा रथे।।23।।

(वायो) हे वायोः तुम हमारे पास (दिवः शिवः) दिव्य कल्याण को लेकर (आ याहि) आओ, तथा सुभश्ण्यं। उत्तम अश्वों के संघ को (वह स्व) चारों ओर ले आओ। (महः) हे महान वायोः तुम (रथे) अपने रथ में (पृथु पक्षसा) महान बल से युक्त दो घोडिया को (वह स्व) जोढो।।23।।

हे वायोः तुम हमें दिव्य कल्याण को प्रदान करो, हम सदा कल्याण के मार्ग पर ही चलें तुम चारों ओर अच्छी तरह संचार करो।।23।।

(28)

38 ऋषिः मनुर्वैवस्वतः। देवता-विश्वेदेवाः। छ. गायत्री।

678 ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन।

विदमहं द्वितासनन्।।1।।

यज्ञ में तैंतीस देव आकर बैठे और वे यज्ञकर्ता को अभ्युदय और निःश्रयस को सिद्धि करने वाले ऐश्वर्य को प्रदान करें।।1।।

(ये त्रिशंति परः त्रयः) जो तीस अधिक तीन अर्थात् तैंतीस (देवासः) देव (बर्हिः आसदन यज्ञ में आए, उन्होंने (विदन) हमारी इच्छाओं को जाना और (द्विता असंनन्) दो तरह के ऐश्वर्य प्रदान किए।।1।।

(सभी देव तथा द्युझाग्नि, अन्तरिक्ष अग्नि पार्थिवार्ग अथवा आत्मागि, प्राणागि तथा जठराग्निः ये तीन प्रकार की अग्नियाँ हमारा पावन करें, तथा हम भी उनका सत्कार करें।।2।।

(29)

39 ऋषिः य.प., कश्यपो या मारीचः। दे.य.प.।छ.

द्विष विराट।

689 त्रीण्येक उरुगावो वि चकमे यत्र देवासमिदत्ति।।7।।

(यत्र देवासः भदत्ति) जिन तीनों लोकों में देवगण आनन्द से रहते हैं तथा उन तीनों लोकों को (उरुगामः एकः) बहुत ही स्तुत्य एक देव ने (वि चक्रमे) अपने पद से नाप लिया विष्णु ने अपने पैरों से तीनों लोकों का नाप दिया।।7।।

40 ऋषिः-य.प.।

692 अर्चन्त एके महि साय मन्वत वेन सूर्यमरोचयन।।10।।

(एक महि साम मन्वत्त) कुछ ज्ञान प्रशंसनीय साम का गान करते हैं, (अर्चत्तः) पूजा करते हुए उन्होंने (तेन) उस अपने कर्म से (सूर्य अरोचयत्) सूर्य को प्रकाशित किया।।10।।

ऋषियों ने सभी देवों को सामगान द्वारा पूजा की ओर सूर्य का प्रकट किया।।10।।

(31)

41 ऋषिः-य.प.। दे.-दैपत्याशिषः। छ. पादमिचृत!

706 आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम।
आ विष्णोः सचाभुवः।।10।।

(पर्वतानां शर्म) पर्वतों पर जो सुख है, (नदीनां) नदियों में जो सुख है तथा (सचा भुवः विष्णोः) देवों के साथ रहने वाले विष्णु का जो सुख है, उसे हम (आ वृणीमहे) माँगते हैं।।10।।

पर्वत के अंदर, नदियों के अंदर निहित जो सुख है, वह सुख इन पति पत्नी को मिले।।10।।

(38)

42 ऋषिः-श्यावाश्व आत्रेयः। दे.-इन्द्रागी। छ. गायत्री।

829 आहं सरस्वतीवतो-रिन्द्राग्न्योरवो वृणे।
या.मां. गायत्रमृच्यते।।10।।

(याभ्यां गायत्रां ऋच्यते) जिन देवों को गायत्री छन्दवाले मंत्र बोले जाते हैं, उन (सरस्वतीवतोः इन्द्राग्न्योः) ज्ञान से युक्त इन्द्र और अग्नि (अवः अहं वृणे) संरक्षण मैं चाहता हूँ।।10।।

हे देवोः जिस तरह तुम्हें ज्ञानी बुलाते हैं, उसी तरह मैंने भी गायत्री छन्दों में मंत्राों के द्वारा तुम्हें बुलाया है।।10।।

(39)

43 ऋषिः नामाकः काण्वः। दे.-अग्निः। छ. महापङ्क्ति।

825 अगिर्जाता देवाना मगिवेद मतीनामपीच्यम्।
अगिः स द्रविणोदा अगिद्वारा व्यूर्णुते
स्वाहुतो नवीयसा नमन्तामन्येके सभे।।6।।

(अग्निः देवानां जाता) अगि देवों के जन्मों को जानता है, (अग्निः मर्तानां अपीच्यं वेद) अग्नि मनुष्यों के रहस्यों को जानता है। इसी प्रकार (सः अग्निः द्रविणोदाः वह अग्नि ऐश्वर्य का देने वाला है। तथा (अग्नि नवीयसा सु आहुतः द्वारा व्युर्णुते) अग्नि नये–2 अन्नादि द्वारा अच्छी प्रकार आहुत होकर धन के द्वारों को खोज देता है, ऐसे गुणों वाले अग्नि के (समे अन्य के नमत्ता) समस्त शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं।।6।।

1. अग्निः मर्तानां अपीच्यं वेद–अग्नि मनुष्यों के रहस्यों को जानता है।

यह अग्नि मनुष्यों के सब जन्मों को और उनके सब रहस्यों को जानता है। इसलिए उससे छिपकर कुछ भी काम नहीं किया जा सकता। मन में सोची हुई बुरी बात को भी वह जान जाता है। इसलिए जो उपासक उससे डरते हुए उसको आहुति प्रदान करते हैं, उनके लिए वह धन के द्वारा खोल देता है और उनके सब शत्रुओं को नष्ट कर देता है।।6।।

(41)

44 ऋषिः-नामाकः काण्वः। दे. वरुणः। छ. महापङ्क्ति।

853 तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः।
नाभाकस्य प्रशस्तिभि-र्यः सिन्धूनामुपोद्ये
सप्तस्वसा स मध्यमा नभन्तामन्यक समो।।2।।

(यः सिन्धूनां उपउदये) जो नदियों के पास सप्ताखसा मध्यमः सः) सात बहिनों वाला अन्तरिक्ष स्थानीय वरुण है (तं) उस वरुण की (समना गिरा) मनःपूर्वक की गई स्तुति से (पितृणाां च भन्ममिः) पितरों के स्तोत्रों से साथ (नामाकस्य प्रशसितिभः) नामाक ऋषि की प्रशंसाओं से स्तुति करता हूँ। (अन्य के समेनमत्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएँ।।2।।

वरुण सात किरणों से युक्त है, और अन्तरिक्ष में रहता है। इस वर्णन पर से प्रतीत होता है कि वरुण अन्तरिक्ष स्थानीय विद्युत है। विद्युत में स्थित सात रंग की किरणें ही इस वरुण की सात बहिनें हैं।।2।।

(43)

45 ऋषिः विरूप आङ्गिरसः। दे.-ऋषिः। छ. गायत्री।

891 विशां राजानमद्भुत्-मध्यक्षंमियम्।
अग्निमीक स उ श्रवत।।24।।

(विशां राजानं धर्मणां अद्भुत अध्यक्ष) प्रजाओं के राजा समस्त धर्मों के अद्भुत द्रष्टा (हुमं अग्निं ई ळे) इस अग्नि का मैं स्तुति करता हूँ। (सउश्रवत) वही वस्तुतः हमारे वचनों को सुनने वाला है।।24।।

1. धर्मणां अध्यक्षः विशां राजा–धर्म का अध्यक्ष ही प्रजाओं का राजा होने योग्य है।

अग्नि भी अपने उपासकों का भय करता है, क्योंकि वह सदा धर्म के मार्ग पर चलता है। वह सब शत्रुओं का नाश करता है।।24।।

46 ऋषिः-य.प.।

898 अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियंशीरं पावकशोचिषम्।
हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे।।31।।

(मन्द्रं पुरुप्रियं पावकशोचिषं शीरं अग्नि) आनन्दप्रद, बहुतों को प्रिय पवित्रकारक, तेजवाले यज्ञ में अत्यन्त तेजस्वी अग्नि को हम (हृद्भिःईमहे) प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों द्वारा हर्षित करते हैं।।31।।

अग्नि का दिया हुआ धन कभी नष्ट नहीं होता, सदा अक्षय बना रहता है, इसलिए लोग इससे ऐश्वर्य मांगते हैं।।31।।

(44)

47 ऋषिः-विरूप आङ्गिरसः। दे.-अग्निः। छ.-गायत्री।

913 ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिष्यम्।
अस्मिन् यज्ञो स्वध्वरे।।13।।

मैं (अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे) इस उत्तम हिंसा रहित यज्ञ में (ऊर्जः नपातं पावकशोचिषं अग्नि आहुवे) बल को क्षीण न करने वाले पवित्र दीप्ति से सम्पन्न अग्नि को बुलाता हूँ।।13।।

यह अग्नि (ऊर्जः न पात्) बल को न गिराने वाला है। जब तक शरीर में अग्नि रहती है, तब तक बल क्षीण नहीं होता ओर अग्नि के समाप्त होने के साथ ही बल भी समाप्त हो जाता है। अग्नि के रहने पर यह शरीर तेजस्वी दिखाई देता है और उज्ज्वल प्रकाश से युक्त होता है। इसलिए साधक इसकी पूजा करते हैं, और इस उच्चपद पर प्रतिष्ठापित करते हैं।।16।।

48 ऋषिः-य.प.।

916 अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत पतिः पृथिव्या अयम्।

अपां रेताँसि जिन्वति।।16।।

(मूर्धा, दिवा ककुत पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः) देवों में सर्वश्रेष्ठ, आकाश में सूर्यवत उन्नत और पृथ्वी का स्वामी यह अग्नि (अपां रेतांसि जिन्वति) स्थावर जंगमादि जीवों का अपने सामर्थ्य से पावन करता है।।16।।

अग्नि सब देवों में श्रेष्ठ, उन्नत और सामर्थ्यवान होता है। यह अग्नि अपने सामर्थ्य से सब चराचर विश्व का पालन करता है।।16।।

49 ऋषिः य.पं.।

923 यदग्रे स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।

स्युष्टं सत्या इहाशिषः।।23।।

हे (अग्रे) अग्रेः (यत अहं त्वं स्यां) जो मैं तू हो जाऊँ, और (त्वं वा ध अहं स्याः) तू मैं बन जा तब (इह ते आशिषः सत्याः स्युः) इस लोक में तेरे आंशीर्वाद सत्य हों।।23।।

उपासक की तन्मयता अपने उपास्य में इतनी प्रगाढ़ होना चाहिए कि उपासक और उपास्य में किसी प्रकार की मिन्नता न रह जाए। सब उपासक उपास्य में मिल जाता है और उपास्य उपासक में, तब उन दोनों में सारी भिन्नताएँ समाप्त हो जाती हैं और वे दोनों एक हो जाते हैं तब उपासक उस तेजोमय परमात्मा के अविनाशी आशीर्वाद अर्थात् आनंद का उपयोग करता है।।23।।

50 ऋषिः-य.पं.

930 पुरागे दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे।

प्र ण आयुर्वसो तिर।।30।।

हे (कवे वस्ते अगे) ज्ञानी तथा सबको बसाने वाले अगेः (दुरितेभ्यः पुरा मृधेभ्यः पुरा) पापों से पूर्व और हिंसकों के आक्रमण के पूर्व ही (नः आयुः प्रतिर) हमारी आयु अर्थात् जीवनशक्ति की वृद्धि कर।।30।।

यह अग्नि जिस मनुष्य में जितना बलवान होता है, वह मनुष्य उतना ही शक्तिमान होता है। पापी और हिंसक उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, इस प्रकार वह दीर्घायु प्राप्त करके चिरकाल तक आनंद से जीवन गुजारता है। यह अग्नि सदा उत्तम बुद्धि प्रदान करता है, और प्रजाओं में सदा जागृत रहता है। मनुष्य भले ही सो जा ए, पर यह अग्नि उसमें भी प्राण के रूप में सदा जागता रहता है।।30।।

शमि—कर्म 'शची शमा इति कर्मनामसु पाठात्'।

(46)

51 ऋषिः-वशोऽश्व्यः। दे.-वायुः। छ. प्रगाथः-
(बृहती, सतोबृहती)

999 यो मं इमं चिदु तपना-मन्दच्चिवं सुकतुः।
अरद्वे अक्षे नहुषो सुकृत्वान सुकृत्तराय सुक्भुः।।20।।

(यः मे इमं) जो वायु मुझे इस (चित्रं दावने) विलक्षण दान को देने के लिए (त्मना चित्) स्वयं ही (अमन्दत) आनन्दित होता है, वह (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करने वाला अपने धन को (अर्टवे) युवा (अक्षे) व्यवहार कुशल (सुकृत्वनि) उत्तम कार्य में कुशल (नहुष) मनुष्य में (सुकृत्तराय) अधिक उत्तम कर्म करने वाले के हितार्थ देता है।।27।।

यह वायु उत्तम कार्य करने वाले, अवर्णनीय, आधार देने वाले मनुष्य को उत्तमोत्तम कर्म करने के लिए उत्साह देता है।।27।।

52 ऋषिः-य.पं.। छ. पङ्क्तिः

1004 शतं दासे बल्लबूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे।
ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदंत्ति
देवगोपाः।।32।।

(तरुक्षः) सबको आश्रय देने वाला (विप्रः) बुद्धिमान (बल्बूथे) बलशाली वायु (शतं दासे) सैकड़ों जनों को (आ दर्द) आश्रय देता है। हे (वायो) वायोः (ते रमे जन्मः) वे स्तुति करने वाले ये जन (इन्द्रगोपाः) इन्द्र से रक्षित होकर (मदन्ति) आनन्दित होते हैं तथा (देवगोपाः) देवों अर्थात् विद्वानों से रक्षित होकर (मदत्ति) आनन्दित होते हैं।।32।।

सबको आश्रय देने वाला बुद्धिमान तथा बलशाली वायु सबको प्राण प्रदान करता है। सभी प्राणि इन्द्र से रक्षित होकर आनन्दित होते हैं।।32।।

(47)

53 ऋषिः त्रित आप्त्यः। दे.-आदित्याः 14-1:
आदित्योषसः (दुःष्वप्नघ्नं)। छ.-महापङ्क्तिः।

1015 यद्देवाः शर्मं शरणं यद्भुत्दं यदनातुरम।
त्रिधातु यद्वंरूथ्यं ? तदस्मासु वि यन्तना
-नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः।।10।।

हे (देवाः) देवोः (यत् शर्म शरणं) जो कवच सुखदायी (यत भद्रं) जो कल्याणकारी और (यत् अनातुरं) जो निरोगिता देने वाला है, (यत् त्रिधात) जो तीन तरह से धारण करने वाला है,

(यत् वरूथ्यं) जो सुरक्षा करने वाला है, (तत् अस्मासु वियत्तन) वह कवच हमें प्रदान करो। (वः ऊतयः अनोहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित है, (वः ऊतवः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण है।।10।।

हे देवोः जो सुखदायी, कल्याणकारी और निरोगिता देने वाला कवच है, उस कवच को हमें प्रदान करो, ताकि उससे हमें आध्यात्मिक आधि भौतिक और आधिदैविक शान्ति मिली और हमारी हर तरह से सुरक्षा हो।।10।।

54 ऋषिः-य.प.।

1018 यदाविर्यदपीच्यं ? देवासो अस्ति दुष्कृतम्।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य अरे अस्मद दधातना-
-नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः।।13।।

हे (देवासः) देवो। (यत् आविः अस्ति) जो पाप प्रकट हुआ हो, तथा (यत दुष्कृत) जो पाप (अपीच्यं) गुप्त रूप से हुआ हो, (तत विश्व आप्त्ये त्रिते) वह सब मुझ त्रित आप्त्य में न रहे, (अस्मत् आरे दधातन) उस पाप को हमसे दूर भेज दो। (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हो।।13।।

हे देवोः जो पाप हमसे प्रकट रूप से हुआ हो अथवा गुप्त रूप से हुआ हो, वे सभी पाप हमसे दूर रहें। हम कभी किसी तरह का पाप न करें।।13।।

(54)

55 ऋषिः-मातरिश्वा काण्वः। दे. विश्वेदवाः। छ.-प्रगाथः।

1089 आ वो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गम-ञ्छुण्वन्तृमरुतोहवम्।।3।।

(सजोषसः विश्वेदवासः) प्रीतिपूर्वक रहने वाले सभी देव (नः उप आ गत्तन) हमारे पास आवें। (वसवः सदाः अबसेनः आ रामन्) वसु और रुद्र हमारी रक्षा करने के लिए हमारे पास आवें।

(मरुतः न हवं शृण्वत्तु) मरुदुण हमारी प्रार्थना सुनें।।3।।

सभी देव हमारी रक्षा करने के लिए हमारे पास आवें और हमारी प्रर्थना सुनें।।3।।

56 ऋषिः-य.प.। दे.-इन्द्रः।

1094 वयं त इन्द्र स्तोमोभिर्विधेम त्वमस्माकंशतकतो।

महि स्थूरं शशयं गधो अहयं प्रस्कष्वायनितोशय।।8।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः (वयं ते) हम तेरे हैं, और (त्वं अस्माकं) तू हमारा है, इसलिए हम (स्त्रोमेमिविधेस) स्तोत्रों से तेरी स्तुति करते हैं, हे (शत्क्रतोः) सैकड़ों कर्म करने वाले इन्द्रः (महि स्थूरं शशयं अ–हय राधः) महान बड़े सदा रहने वाले, अनिदनीय अथवा कम न होने वाला धन (प्रस्कण्वान नितोक्षय) प्रस्कण्व के लिए दो।

वयं ते–हम तेरे हैं। त्वं अस्माकं–तू हमारा है, महि स्थूर शशयं अ–हयं राधः नितोशय बड़े महान सदा रहने वाले कम न होने वाले धन को हमें दे दो।।8।।

हे इन्द्रः हम तेरे हें और तू हमारा है, इसलिए हम स्तोत्रों से तेरी स्तुति करते हैं। तू ज्ञानी को आनंद देने वाला धन प्रदान कर।।8।।

(55)

57 ऋषिः-कृशः काण्वः। दे.-इन्द्रः प्रस्कण्वश्च।छ.गा.

1099 आदित साप्तस्यवर्क्रिर-माननस्य महिश्रवः।

श्यावीरतिध्वसन प्रथ श्चक्षुषा चन सनशे।।5।।

हे मनुष्योः (आत इत) इसके अनन्तर (साप्तस्य चर्किस) उस सातों लोकों के स्वामी इन्द्र की स्तुति करो—क्योंकि (अ—नूनस्य) उस पूर्ण पुरुष का (श्रृवः महि) यश महान है, और जो (श्यावीः पथः अति ध्वसन) वाले अर्थात् दोष पूर्ण मार्गों का पार कर जाता है, (वह उस इन्द्र को) (चक्षुषा चन संनश) आँख से भी देख सकता है।।5।।

1. अ—नूनस्य श्रवः महि—उस पूर्ण पुरुष का यश महान है।

2. श्यावीःपथः अति ध्वसन चक्षुषा चन संनशे—बुरे मार्गों को पार करता हुआ मनुष्य इन्द्र को आँखों से भी देख सकता है।

जो ज्ञानी उत्तम मार्ग पर चलता है, वह इन्द्र का साक्षात्कार कर सकता है। ऐसे ज्ञानी पुरुष का यश महान् होता है।।5।।

(57)

58 ऋषिः मेध्यः काण्वः। दे. अश्विनौ। छ.-त्रिष्टुप्।

1106 युवां देवास्मयं एकादशासः
सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात्।
अस्माकं यद्वा सवनं जुषाण।
पातं सोममश्विना दीद्यगी।।2।।

(भयः एकादशासः) तीन गुने ग्यारह यानी 33 (सत्याः देवाः) सच्चे देव (युवां) तुम दोनों (सत्यस्य पुरस्तात ददृशे) सत्य के आगे दीख पड़े हे (दीघग्री) जगमगाते अग्नि के सदृश तेजस्वी आश्विदेवोः (अस्माक यत्तं सवनं जुषाणा) हमारे यज्ञ तथा सवन का सेवन करते हुए (सोमं पातं) सोम का पान करो।।2।।

हे अश्वि देवोः तुम दोनों सत्य का पालन करने वाले हो और जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी हो तुम हमारे पास आकर

सोमरस का पान करो।।2।।

(58)

59 ऋषिः-मेध्यकाण्ड। दे.-विश्वेदवाः। छ.-त्रिष्टुप।

1110 एव एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एक सूर्योविश्वमनुप्रभूतः।

एकैवोषाः सर्वमिदं वि मा-त्येक वा इदं बभूव सर्वम्।।2।।

(एकः एव अग्निः) एक ही अग्नि (बहुधा समिद्धः) अनेक प्रकार से प्रदीप्त होता है (एकः सूर्यः) एक ही सूर्य (विश्व अनु) सबमें प्रविष्ट होकर (प्रभूतः) अनेक तरह से प्रकट होता है (एका एव उषाः) अकेली ही उषा (इदं सर्व विभांति) इस सब विश्व को प्रकाशित करती है (एकं वा) अकेला ही प्रभु (इदं सर्वं वि बभूव) इस सब विश्व के रूप में प्रकट होता है।।2।।

इन्द्र और वरुण ये दोनों देव अन्तरिक्ष, के ऊपर द्युलोक में रहते हैं। इन दोनों देवों की निन्दा करने वाला इनका शत्रु कोई नहीं है। इन्हीं देवों के कारण वनस्पतियों में और जलों में रस होता है और उन्हीं रसों के कारण उनकी महिमा है।।2।।

(67)

60 ऋषिः-मत्स्यः साम्मदः, मैवावरुविर्मान्यः बहवो दायत्या जालनद्धाः। दे.-आदित्याः। छ.-गायत्री।

1238 नास्माकंमस्ति तत् तर आदित्यासो अतिष्कदे।

यूयमस्मभ्यं मृकत।।19।।

हे (आदित्यासः) आदित्योः जो बल हमें (अतिष्कदे) संकटों से पार कर सकता है, (तत् तरः) वह रण (अस्माकं न आत्ति) हमारे पास नहीं है। अतः (यूयं अस्मझं मृहत) तुम हमें सुखी करो।।19।।

61 ऋषिः-य.प.।

1239 मानो हेति र्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमः शरुः।
पुरा नु जरसो वधीत्।।20।।

हे (आदित्याः) आदित्योः (विवस्वतः) यम के (कृत्रिमाशरुः हेतिः) कृत्रिम और हिंसक शस्य (ना) हमें (जरसः पुरा या वधीत्) बुढ़ापे से पहले न मारें।।20।।

हे देवोः यम के हिंसक शस्त्र हमें बुढ़ापे से पूर्व नष्ट न करें, क्योंकि उन शस्त्रों से बचने के लिए जो सामर्थ्य हमारे पास होना चाहिए वह हमारे पास नहीं है, इसलिए तुम हमारा रक्षा करो।।19–20।।

(69)

62 ऋषिः-प्रियमेध आङ्गिरसः। दे.-वरुणः।
छ.-अनुष्टुप्।

1271 सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव।।12।।

हे (वरुण) वरुणः (यस्य ते) जिस तेरे सामर्थ्य के कारण (सप्तसिन्धवः) सातों नदियाँ (सूर्म्यं सुषिरां इव) रश्मियों का जाल जिस तरह सूर्य की तरफ जाता है, उसी तरह (काकुदं अनुक्षरत्ति) समुद्र की ओर बढ़ती हैं।।12।।

सभी देव सोमरस पीकर तृप्त होकर आनन्दित होते हैं। मनुष्यों के सभी यज्ञ कर्मों मं इन देवों की स्तुति होती है। उन देवों में जल के देवता वरुण के कारण जल के प्रवाह समुद्र की ओर बहते हैं। इसी तरह सभी कर्मों से इन देवों की महिमा प्रकट हो रही है।।12।।

63 ऋषिः-य.प.।

1277 अनु प्रलस्यौकस प्रियमेधाल एफाम।

पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तवर्हिषो हिग्प्रयस आशत।।18।।

(पूर्वा प्रयतिं अनु) मुख्य यज्ञ के लिए वृक्त वर्हिषः) आसन बिछाने वाले तथा (हित प्रयासः) हितकारक अन्न देने वाले (प्रिय मेधासः) प्रिय मेध कषि के पुत्रों ने (एषां प्रत्नस्य ओकसः) इन देवों के प्राचीन घरों को (अनु आशत) प्राप्त किया।।18।।

मेधाबुद्धि को धारण करने वाले ऋषियों ने भक्ति द्वारा देवों के स्थान स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त किया।।18।।

(71)

64 ऋषिः-सुदीति-पुरुभळहावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः।

दे.-अग्निः। छ.-गायत्री।

1295 सनोविश्वेमिर्देवेमि-रूजों नपाद्भद्रशोचे।

रयिं देहि विश्ववारम्।।3।।

हे (ऊर्जः नपात्) बल को न गिरने देने हारे (भद्रशोचे) कल्याणकारी ज्वालाओं वाले अगेः (सः नः विश्वेभिः) वह प्रसिद्ध तू हमें सब देवों द्वारा (विश्ववारं रमि देहि) सब जनों से वरण करने योग्य श्रेष्ठ ऐश्वर्य दिलवा।।3।।

अग्नि की ज्वालाएँ जहाँ तक प्रकाशित होती हैं वहाँ के सब जन्तु नष्ट हो जाते हैं, अग्नि सर्वत्र पत्रिता करता है।।3।।

(72)

95 ऋषिः-हर्यतः प्राणाथः। दे.-अग्निः हवीणि वा। छ.गा.

1314 दुहन्ति सप्तैका-मुप द्वापञ्च सृजतः।
तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे।।7।।

(सप्त एकां दुहन्ति) सात ऋत्विज मिलकर एक का ही दोहन करते हैं। उनके बीच में (द्वा पञ्च सिन्धोः स्वरे अधि–उप सृजतः) दो ओर पाँच नदियों के तीर्थ स्थान पर ऊँचे स्वर में अग्नि का स्तोत्र गान करके अन्यों को प्रेरित करते हैं।।7।।

अग्नि अपने रथ पर चढ़कर मेधों में संचार करने लगता है, तब इसके रथ के बिजली रूपी चमकीले लगाम दूर से ही दीखने लगते हैं। तब सातों लोक इस अग्नि से पानी दुहते हैं अर्थात् सातों लोकों को यह अग्नि जल प्रदान करता है। अन्य लोग भी सर्वत्र बैठकर ऊँचे स्वर से इसकी स्तुति करते हैं।।6–7।।

66 ऋषिः-य.प.।

1316 परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी।
महवा होतारो अञ्जते।।9।।

(त्रिधातुः जूर्णिः नवीयसी अध्वर एति) कुष्ण लोहित शुक्ल भेद से तीन वर्णवाला वेगवान यह अग्नि अपनी नवीन ज्वाला से यज्ञ को जाता है।

(होतारः मध्वा परि अञ्जते) होत्र निष्पादक अध्वर्यु आदि ऋत्विकगण घृतादि की आहुति से अग्नि को सब ओर से सींचते हैं।।9।।

धुंवे की अवस्था में कृष्णवर्णमाला, थोड़ा जलने पर लालवर्णवाला और अत्यन्त प्रज्वलित होने पर अत्यन्त शुभ्रवर्णवाला यह अग्नि अपनी ज्वालाओं सहित यज्ञ में जाता है, वहाँ अध्वर्यु आदि इस अग्नि को सब ओर से घी से सींचते हैं। तब दसों

अंगुलियों से सिंचति होकर यह अग्नि मेधों में जाकर अपनी किरणों से उसे लार गिराता है और पानी बरसाता है।।8–9।।

(73)

67 **ऋषिः-गोपवन आत्र्यः सप्तवध्रिर्वा। दे. अश्विनौ, छ.-गायत्री**

1338 **यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी।**

अत्ति षद्भुतु वामवः।।13।।

(वां सजात्यं समानं) तुम्हारा उत्पन्न होना समान है, और हे (आश्विना) अश्वि देवोः (बन्धुः समानः) बांधव भी समान है। (वां अवः अत्ति सत भू तु) तुम्हारे संरक्षण सदा हमारे पास रहें।।12।।

68 **समानं वां सजात्यं समाना बन्धुरश्विना।**

1337 **अत्ति षद्भूतु वाभवः।।12।।**

इन अश्विदेवों का रथ सर्वत्र गमन करने वाला है, उनके रथ की गति कहीं नहीं रुकती। हे देवोः तुम हमारे समीप आकर हमारी रक्षा करें।।13।।

(74)

69 **ऋषिः-गोपवन आत्रेयः। दे.-अग्निः। छ -अनुष्टुम्बुखः = प्रगाथः-(अनुष्टुप + गायत्र्यौ)**

1344 **विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम।**

अगिं वो दुर्य वचः वस्तुषे भूगणस्य मन्मभिः।।1।।

हे मनुष्योः (वः वाजयत्तः विशोविशः अतिथि पुरुप्रियं अग्नि) तुम सब अन्न की कामना करते हुए, समस्त प्रजाओं के पूज्य अतिथि, बहुतों के प्रिय अग्नि का स्तुतियों द्वारा पूजन करो। और

मैं भी (वः शूषस्य दुर्ग वचः मन्मनिः स्तुषे) तुम्हारे सुख लाभ के लिए अरणि में निहित अग्नि की वचन और मननीय स्तोत्रों द्वारा स्तुति करता हूँ।।1।।

मैं भी तुम्हारे सुख के लिए तथा हित के लिए अग्नि की प्रशंसा और स्तुति करता हूँ।।1।।

70 ऋषिः-य.प.।

1346 पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युधता।
हव्यान्यैंश्यद्दिवि।।3।।

(यः देवताति उद्यता हव्यानि दिखि ऐरयत) जो अग्नि, यज्ञ में उत्तम रीति से प्रापत हव्य पदार्थों को द्युलोक में देवों के लिए प्रेरित करता है, उस (जात वेदसं पन्यासं) संसार के सब पदार्थों को जानने वाले सर्वत्र, स्तुति के योग्य अग्नि को हम सब प्राप्त करें।।3।।

यह अग्नि आहुति रूप में डाले गए हवन पदार्थों को बहुत सूक्ष्म बनाकर ऊपर द्युलोक में पहुँचाता है, और उसके द्वारा वायुमण्डल को शुद्ध बनाकर सारे संसार का हित करता है। इसी अग्नि की सहायता से वीर शत्रुओं का नाश करते हैं।।3।।

71 ऋषिः-य.प.।

1348 अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम्।
घृताहवनमीडयम्।।5।।

(अमृतं जातवेदसं नमांसि तिरः दर्शतं) अमृत स्वरूप, संसार के सब पदार्थों को जानने वाला, अंधकार को दूर करके सत्यज्ञान को दर्शानेवाला और (घृताहवनईऽयं) घृत से आहुत किए जाने योग्य, स्तुत्य अग्नि की हम माननीय स्तोत्रों से स्तुति करते हैं।।5।।

यह अग्नि अपने मित्र की शक्ति को बढ़ाने वाला, अमृतरूप तथा अंधकार को हटाकर सत्य ज्ञान को दिखाने वाला है। इस अग्नि को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य यज्ञ में घृत की आहुतियाँ देते हैं।।5।।

72 ऋषिः-य.प.।

1350 इयं ते नव्यसी मति-रगे अधाभ्यस्मदा।
मन्द्र सुजात सुक्रतोऽभूर दस्मातिथे।।7।।

हे (मन्द्र, सुजात, सुक्रतो, अमूर दस्म अतिथे अग्रे) हर्षजनक सुख स्वरूप शुभ कर्म और प्रज्ञा वाले मेधावी दर्शनीय और अतिथि वत पूज्य अग्रेः (ते इयं नव्यसी मतिः अस्मत अधामि) तेरी यह स्तुति के लिए ज्ञानमयी बुद्धि हमारे में स्थिर हो।।7।।

यह अग्नि अपने मित्र की शक्ति को बढ़ाने वाला अमृत रूप तथा अन्धकार को हटाकर सत्य ज्ञान को दिखाने वाला है। इस अग्नि को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य यज्ञ के घृत की आहुतियाँ देते हैं।।5।।

हे अग्नेः हमारे अन्दर तेरी स्तुति के योग्य बुद्धि स्थिर हो और उस उत्तम बुद्धि से प्रेरित होकर हम तेरी अत्यन्त उत्तम स्तुति करें। वह स्तुति हमारे लिए भी सुखकारी एवं अन्न को देने वाली हो, साथ ही तुझे भी उन्न करें।।7।।

(76)

73 ऋषिः-कुरुसुतिः काण्वः। दे.-इन्द्रः। छ. गा.।

1386 वाचमष्टापदीमहं नवस्मक्तिमृतस्पृशम।
इन्द्रात परि तत्त्वं ममे।।12।।

(अष्टापदीं नवस्यक्ति, ऋतस्पृशं तत्त्वं) आठ पदों वाली, नौ स्त्रक्तयों वाली, यज्ञ में प्रयुक्त, विस्तृत (वाचं) स्तुति करो (अहं) मैं (इन्द्रात् परि ममे) इन्द्र के लिए करता हूँ।।12।।

जब इन्द्र राक्षसों को मारता है, तब सभी लोक इस इन्द्र की शक्ति को बढ़ाते हैं, और उसके लिए स्तुतियों की जाती हैं।।12।।

(80)

74 ऋ. एकधूनौंघसः। दे.-इन्द्रः 10 देवाः। छ.गा., 10 मि.

1425 तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि।
आदित पतिर्न ओहसे।।9।।

हे इन्द्रः (आत इत) जिस कारण, हमारा (पतिः) स्वामी तू (नः) हमें (ओह से) प्राप्त कराता है, अतः (यदा) जो तू ने (तुरीयम) चौथा (यज्ञियम) यज्ञ सम्बन्धि (नाम) नाम (करः) किया है, हम (तत्) उसको (उश्मसि) चाहते हैं।।9।।

इन्द्र ने वस्तुओं के नाम और गुण निर्धारित किए हैं, नक्षत्रनाम मुझनाम प्रकाशनाम और सोमयाजी ये चार नाम हैं, इनमें यज्ञ सम्बधि चौथा उत्तम है। यह सर्वोत्तम कर्म है, यज्ञ में ही देवों की पूजा होती है। यज्ञ में कमाना ही उत्तम है।।9।।

75 ऋ. य.प.।

1426 अवीवृधद्वो अमृता अमन्दी-देकद्यूर्देवाउतयाश्चदेवीः।
तस्मा उ राधः कृबुत प्रशस्तं प्रातमज्ञ
धियावसुर्जगम्यात।।10।।

हे (देवाः उत याः च देवीः) देवो और देवियों, (एकद्यूः) एकद्यूने (अमता अमन्दीत) अमृत से तुम्हें आनन्दित किया, तथा (वः अवीवृधत) तुम्हारी महत्ता बढ़ाई, अतः तुम (तस्मा प्रशस्तं

गधः कृणत) प्रशंसनीय ऐश्वर्य प्रदान करो। (धियावसूः बुद्धि से धन प्राप्त करने वाला अग्नि (प्रातः भक्षू जगम्यात) प्रातःकाल शीघ्र ही आवे।।10।।

हे देवोः जो अमृतज रूपी सोमरस देकर तुम्हें तृप्त करता है, उसे तुम प्रशंसनीय धन देकर उसे सम्पतिशाली बनाओ।।10।।

(83)

76 ऋ. कुसीदीकाण्वः। दे.-विश्वेदेवाः। छ. गा.

1451 अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्।
इता मरुतो अश्विना।।7।।

(इन्द्र विष्णो मरुतः अश्विना) हे इन्द्र विष्णु मरुत और अश्वि देवोः (नः) हमें (एषां सजात्याना आ अधि) इव स्वबान्धवों के बीच में सर्वोपरि करो।।7।।

सभी देवों की कृपा से हम उन्नति को प्राप्त हों तथा अपने सम्बन्धियों के मध्य में हम सर्वोपरि हों।।7।।

(84)

77 ऋषिः-उशना काण्यः। दे.-अग्निः। छ.गा.।

1454 प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
अग्नि रथं न वेद्यम्।।1।।

हे मनुष्योंः मैं (वः) तुम लोगों के कर्म की सिद्धि के लिए (प्रेष्ठं, अतिथि, मित्रं इव प्रियं) सबसे अधिक प्रिय अतिथिवत पूज्य, मित्र के समान प्रीतिकारक और (रथं न वेद्यअग्नि स्तुषे) रथ के समान धनु प्राप्ति के हेतु ऐसे अग्नि की स्तुति करता हूँ।।1।।

78 ऋ.-य.प.।

1455 कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अधं द्विता।
नि मर्त्ये वादधुः।।2।।

(अध) और भी (देवासः कविं प्रचेतसं इव) इन्द्रादि देवों ने महान ज्ञानी विद्वान् के समान (यं मर्त्येक द्विता नि आदधुः) जिस अग्नि को मनुष्यों के बीच में दो प्रकार से प्रतिष्ठित किया है।

यह अग्नि मनुष्यों में गार्द्धपत्य, आहवनील, पति–पत्नी, पिता–पुत्र, भौतिक और जाठर इन रूपों में रहता है। यह दूरदर्शी, बुद्धिशाली मित्र के समान लोगों का हित करने वाला, अत्यन्त पूज्य तथा हर प्रकार की ऐश्वर्य–प्राप्ति का कारण है। ऐसे इस अग्नि का पूजा हर एक को करनी चाहिए।।1–2।।

(86)

79 ऋ. कृष्ण आङ्गिरसः, विश्व को वा कार्ष्णिः।
दे.–अश्विनौ। छ.–जगती।

1474 युवं हिष्मा पुरुभुजेभमेधतु विष्णाप्वे ददथुर्वस्यइष्टय।
ता शं विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वियौष्ट
सख्या मुमोचतम्।।3।।

हे (पुरुभुजा) अनेकों को भोजन देने वाले वीरोः (विग्णाप्वे) विष्णापू के लिए (युवं हि स्म) तुम दोनों ने सचमुच (इयं एद्यतुं) इस समृद्धि को (वस्य–इष्टये ददधुः) धन की इष्टि के लिए दे दिया था। (ता वा) ऐसे तुम दोनों को (तनूरुधे) शरीर की सुरक्षा के हेतु विश्वक (हवते) बुलाता है (नः सख्या) हमारी मित्रता को (मा वियोष्टं) दूर न करो और हमें (मुमोचतं) इस दुःख से मुक्त करो।।3।।

विष्णा–पू–सव व्यापक परमात्मा की उपासना करने वाले के प्राण उत्तम रहते हैं और उस उपासक को हर तरह की समृद्धि प्राप्त होती है।।3।।

(87)

80 **ऋषिः-कृष्ण आङ्गिरसो, वासिष्ठो वा द्युम्नीकः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा। देवताः-अश्विनौ, छन्दः-प्रगाथः= (विषमा बृहती समासतोबृहणी।**

1477 **द्युभ्री वां स्तोत्रों अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम्।**
अध्वः सतस्य स दिवि प्रियो नरा प्रातं गौराविवेरिणे।।1।।

हे आश्वि देवोः (सेके क्रिविः न) जब सींचने पर कुआँ जिस प्रकार पानी से भरा रहता है, वैसे ही (वां स्तोत्रः द्युम्नी) तुम्हारा स्तोत्र तेजस्वी हो जाता है, (आगतं) तुम आओ, हे (नरा) नेता वीरोः (कुतस्य मध्वः) सोम का मधुर रस (सः दिवि प्रियः) द्युलोक में भी प्यारा हो रहा है (इरिणे गोरो इव पात) जल स्थान पर दो मृग जैसे पीते हैं वैसे ही तुम भी इस रस का पान करो।।1।।

हे देवोः जिस तरह बार–2 जल निकालने पर भी कुआँ जल से भरा ही रहता है, उसी तरह तुम्हारा स्तोत्र बार–2 गाए जाने पर भी तेज से भरा ही रहता हे। देवों की स्तुति गाने से तेज बढ़ता ही है।।1।।

(93)

81 **ऋः-सुकक्ष आङ्गिरसः। दे.-इन्द्रः छ.-गायत्री।**

1551 **दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्कणः।**
त्वं च मधवन वशः।।10।।

हे (गिर्वणां मद्यवन इन्द्रः) स्तुत्य और ऐश्वर्यवान इन्द्रः (गृणानः त्वं वंशः) प्रशंसित होता हुआ तू वश में रह प्रसन्न हो और (नः) हमारे लिए (दुर्गे चित् संगकृधि कठिन स्थान भी सरवता से जाने योग्य कर।।10।।

हे इन्द्र हमारे लिए कठिन स्थान भी सुगम कर। कठिन स्थान पर सुगमता से पहुँचे ऐसा कर।।10।।

(96)

82 ऋ. तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः। दे. इन्द्रः छन्दः-त्रिपुष्टम्।

1602 तमु पटवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात्।
इन्द्रेव मित्रं दिधिषेम गीमि-रूपोनमोमिवृषभं विशेम।।6।।

(यः इमा जजान) जो इनको पैदा करता है (तं उ स्तवाम) उसी की हम स्तुति करते हैं, (विश्वा जातानि सभी उत्पन्न हुए–2 पदार्थ (अस्मात अवरणानि) इस इन्द्र के बाद उत्पन्न हुए हैं, हम (गीर्मिः) स्तुतियों के द्वारा इन्द्रेण मित्रं दिपिषेम) इन्द्र के साथ मैत्री स्थापित करें, तथा (नमोभिः) नमस्कारों के द्वारा (वृषभ उप विशेभ) बलवान इन्द्र के पास बैठे।।6।।

इस विश्व में उत्पन्न हुए सभी पदार्थ इसी ऐश्वर्यशाली प्रभु से उत्पन्न हुए हैं, हम अपनी स्तुतियों को सहायता से उस प्रभु के समय मैत्री स्थापित करें और नम्रतापूर्वक उस प्रभु की उपासना करें, अर्थात् उस प्रभु के समीप जाकर बैठें।।6।।

(98)

83 ऋषिः-नृमेध आङ्गिरसः। दे. इन्द्रः। छ-ककुप्।

1642 त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतोबभूविथ।
अधां ते सुभ्रमीमहे।।11।।

हे (वसो शतक्रतो) सबको बसाने वाले तथा सैकड़ों यज्ञ करने वाले इन्द्रः (त्वं हि नः) तू ही हमारा (पिता माता बभूविय) पिता और माता है। (अध) इसलिए (ते सुम्नं ईमहे) हम तुमसे सुख मांगते हैं।।11।।

(170)

84 ऋषिः-नेमो भार्गवः। दे.-वाक्। छ-त्रिष्टुप्।

1662 यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसादमन्द्रा।
चतस्म ऊर्जे दुदुहे पयासि वकं स्विदस्याः परमजगाम।।10।।

(अविचेतना निवदन्ती) अज्ञानियों को ज्ञान से मुक्त करती हुई तथा (देवानां भद्रा) विद्वानों को हर्षित करती हुई (यत् राष्ट्री वाक्) जो तेज युक्त वाणी (निषसाद) यज्ञ में बोली जाती है, तब (चतस्मः) चारों दिशाएँ (ऊर्जं पयासि दुदुहे) अभ और दूध आदि को उत्पन्न करती हैं। (अस्याः) इस वेदवाणी का (परमं) मूक स्थान (कु स्वित जगाम) कहाँ है पता नहीं।।10।।

यह वेदवाणी स्वयं तेज से युक्त होकर इसे बोलने वाले को भी तेज से युक्त करती है। यज्ञ में जब वेदों का पाठ होता है, तब वह यज्ञ हर तरह से समृद्ध होता है। वेदवाणी के इतने सारे कार्य प्रत्यक्ष होने पर भी ये वेद किस स्थान से प्रकट हुए यह पता नहीं चलता।।10।।

85 ऋषिः-य.प.।

1663 देवीं वाचमजनयन्त देवान्स्तां विश्वारूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषभूर्ज दुहाना घेनुर्वाणस्मानुप सुष्टतैतु।।11।।

(देवाः) देवों ने (देवीं वाचं अजनयत्त) इस दिव्य वेदवाणी को प्रकट किया, (तां) उस वाणी को (विश्वरूपाः पशवः वदन्ति), अनेक रूपवाले पशु बोलते हैं। (मन्द्रा सा) आनंद देने वाली वह वाणी (नः) हमें (इषं ऊर्ज दुहाना) अन्न और तेज को प्रदान करें। (सु स्तुता धेनुः वाक) अच्छी तरह से स्तुत हुई वह वाणी रूपी गाय (अस्मान् उप एतु) हमारे पास आए।।11।।

वाणी का मूल रूप एक ही है। इस वाणी को भगवान ने प्रकट किया था। पर इस एक ही वाणी को सभी वाणी अलग–2 रूप से बोलते हैं। वह वाणी जब प्रसन्न होती है, तब मनुष्य हर तरह से समृद्ध होता है।।11।।

(101)

86 ऋषिः-जगदग्निभार्गवः। दे.-गौः। छ.-त्रिष्टुप्।

1679 माता रुद्राणां दुहित। वसूनां
स्वासदित्यानांममृतस्य नामिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागाम दिति वधिष्टा।।15।।

महगौर रुद्राणां माता) रुद्र देवों की माता (वसूनां दुहित) वसुदेवों की पुत्री (आदित्यानां स्वसा) आदिथ देवों के बहिन और (अमृतस्य नामिः) अमृत का केन्द्र स्थान है। मैं (चिकितुषे जनाय नु प्रवोचं) ज्ञानी मनुष्य से यही कहता हूँ कि (अनागां अदिति गां) निरपराध और न मारने योग्य गाय को (मा वधिष्ट) मत मार।।15।।

गाय रुदों की माता, वसुदेवों की पुत्री, आदित्य देवों की बहिन है। इस गाय में सभी देवगण निवास करते हैं। इसमें दूध रूपी अमृत है। अतः गाय सब तरह से पूज्य है। इसी कारण वह

वध के योग्य नहीं है, जो प्राणियों में सबसे अधिक सरल इस गाय का वध करता है, वह पाप करता है। गाय की हर तरह से रक्षा करनी चाहिए।।15।।

(102)

87 ऋषिः-भार्गवः प्रयोगः, अग्निर्बार्हस्पत्यः, पावकोवा, सहसः पुत्रौ गृहपति-यविष्ठौ, तयोर्वान्यतरः।

दे.-अग्निः। छ. गायत्री।

1687 अग्नि वो वृधन्त-मध्वराणां पुरुतमम्
अच्छा नत्रे सहस्वते।।7।।

(अध्वराणां नत्रे, सहस्वते बृधन्तं पुरुतमं अग्नि) अहिंसक यज्ञों का नाती, बलवान, ज्वालाओं से वृद्धि को प्राप्त होने वाला, सबसे बड़े पावक अग्नि को (वः अच्छ) तुम सब अच्छी प्रकार उपासना करो।।7।।

यह अग्नि यज्ञ का नाती है। यज्ञ के पुत्र अध्वयु और अध्वयु का पुत्र यह अग्नि है। इसलिए इसे यज्ञ का पौत्र कहा गया है। यह अग्नि सब पदार्थों को उत्तम रूप देता है, उसी प्रकार यह अग्नि मनुष्यों को उत्तम रूप देता है। यह अग्नि अपने परिश्रम एवं प्रयन्त से यशस्वी होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने कर्म या प्रयत्न से ही यशस्वी होता है।।7–8।।

(103)

88 ऋषिः-सोमरिः काण्वः। दे.-अग्निः। छ. हथीयसी

1712 प्रेष्ठसु प्रियाणां स्तुक्षांसावातिथिम्।
अग्निं रथानां यमम्।।10।।

हे (आसावा) स्तोता लोगों। (प्रियाणां श्रेष्ठं अतिथि रथानां यमं अग्नि) प्रियों में सर्व प्रिय और सबने अधिक पूज्य सब चलने फिरने वाले ग्रहों के नियामक अग्नि की (उ स्तुति) निश्चय से स्तुति करो।।10।।

यह अग्नि प्रियों में भी अत्यन्त प्रिय और पूज्य तथा सम्पूर्ण विश्व का नियामक है। इस अग्नि की यदि सच्चे ह्रदय से प्रार्थना की जाय, तो वह उत्तम बुद्धि और अनेक तरह के ऐश्वर्य प्रदान करता है।।9–10।।

89 ऋषिः-य.प.। दे.-अग्रायरुतः। छ.-अनष्टुप्।

1716 आगे याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये।

सोमर्या उप सुष्टुति यादयस्व स्वर्णरे।।14।।

हे (अगे) अगेः (मरुत्सखा) मरुतों का मित्र तू (स्वर्णरे) यज्ञ में (रुद्रेभिः) रुद्रों के साथ (सोमपीतये आ याहि) सोम को पीने के लिए आ तथा (सोमर्याः सुरत्रुति उप यादयस्व) सोमरि ऋषि की स्तुति में आनन्द को प्राप्त कर।।14।।

अग्नि मरुतों का मित्र और हितकारी है। वह शत्रुओं को रुलाने वाले वीरों के साथ यज्ञ में आए, और सबका भरण–पोषण करने वाले ऋषि के यज्ञ में उसकी स्तुतियों को सुनकर आनंद को प्रापत हो।।14।।

अष्टम मण्डल (सुभाषित)

ऋषिः विप्रः ओहते–(90)– मंत्र दृष्टाज्ञानी प्रभु की कृपा प्राप्त करता है।

मन्मना गिरः सुभामि–(171)–परमात्मा की स्तुति से मैं अपनी वाणी को उत्तम और सुशोभित करता हूँ।

मतिः इन्द्रं वनन्वती–(194)–सारी स्तुतियाँ उसी एक परमात्मा को ही प्राप्त होती है।

शुक्रं ज्योतिः सूर्यं दिषि अधारथः–(334)–शुद्ध प्रकाशमान सूर्य को प्रभु ने द्युलोक में स्थापित किया।

तं चर्षणयः कृतेभिः इत आर्यन्ति–(404)–उस प्रभु को मनुष्य कर्मों से ही प्रापत कर सकते हैं।

विश्वे हि मनवे वृथे–भुवन–(659)–सभी देवगण मनुष्य को बढ़ाने वाले हैं।

इन्द्रः चित् तत् अब्रवीत स्मियः मनः अशास्यं–(761)–इन्द्र ने भी वही बात कही थी कि स्त्री के मन पर शासन करना असंभव है।

कविः सः काव्या पुरुरूपं द्यौः इव पुष्यति–(856)–ज्ञानी वह वरुण अपने ज्ञान से अपने अनेक रूपों को द्युलोक के समान पुष्ट करता है।

यस्मिन विश्वानि काव्या श्विता–(857)–इस वरुण में सभी ज्ञान आश्रित है।

क्रत्वा यशश्वतः –(1688)–मनुष्य अपने कर्म और परिश्रम से यशस्वी होता है।

अग्रि इन्धानः मनसा धियं सचेत–**1702**–अग्नि को समिधाओं से प्रज्वलित करने वाला पुरुष श्रद्धा युक्त मन से कर्म करें।

स्वर्धिदं चित्रं रयिं नः आमर–**(325)**–आत्मज्ञानी विलक्षण सामर्थ्यवान् धन हमें भरपूर दो।

सूर्यः नः रोदली अवर्धयत् अस्य केतवः ववशुः–**(294)**–सूर्य ने हमारे लिए द्युलोक और भूलोक को विस्तृत किया है, इस इन्द्र के किरण सूर्य के समान चारों ओर फैले हैं।

सूर्य प्रकाशता है वैसा इन्द्र विद्युदेव भी प्रकाशता है। दोनों अपने किरण फैलाते हैं। इस तरह दोनों (सूर्य और इन्द्र) की समानता है।

नवम् मण्डल

114—सूक्त 1108 मंत्र

(4)

1 **ऋषिः-हिरण्यरूप श्राङ्गिरस। दे.-पवमानः सोमः।**
छ. गायत्री

35 **त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः।**
अर्था नो वस्यसस्कृधि।।5।।

हे सोमः (तव क्रत्वा) तेरे कर्तृत्व से (तव ऊतिभिः) तेरे संरक्षणों से (त्वं नः सूर्ये आ भज) तू हमें सूर्य के प्रकाश में पहुँचा दो। और हमें अन्नों से युक्त कर।।5।।

(5)

2 **ऋषिः-काश्यपोऽसितो देवलोवा। देवताः-तिस्त्रो**
देव्यः छ. अनु.

48 **भारती पवमानस्य सरस्वतीका मही।**
इयं नो यज्ञमा गमन् तिस्त्रो देवीः सुपेशसः।।8।।

भारती (भारत की राष्ट्र भाषा), (सरस्वती) विद्या और (मठी इका) बड़ी वाणी ये (सुपशसः तिष्यः देवीः) सुंदर रूपवाली तीन देवियाँ (पवमानस्य इमं नः यज्ञं) सोम के हमारे इस यज्ञ में (आगमन्) आयें।।8।।

(10)

3 **ऋषिः-काश्यपोऽसिलो देवलो वा। दे.य.प.।**
छ.गायत्री

94 **समीचीनासं आसते होतारः सप्तजामयः।**

पदभेकस्य पिप्रतः।।7।।

(जामयः) संबंधित लोगों के समान (सप्त होतारः) सात हवन करने वाले ऋत्विज (समीचीनासः) आसते) प्रसन्नचित्त होकर यज्ञ में बैठते हैं। वे (एकस्य पदं पिप्रतः) यज्ञ के एक महत्व के स्थान को पूर्णता से सफल करते हैं।।7।।

(11)

4 **ऋषिः-य.प.।**

104 **इन्द्राय सोम पातवेमदाय परि पिच्यते।**

मनश्चिन्मनससातिः।।8।।

हे सोमः (मनः चित) मन को जानने वाला (मनसः पातेः) मन का स्वामी तू (इन्द्राय पातवे) इन्द्र के पीने के लिए तथा (मदाय) उसको आनंद देने की लिए (परि शिच्यसे) तुम्हारा रस पात्रों में निकाला जाता है।।8।।

मनः चित्–मन को ठीक रीति से परीक्षा करके जानना चाहिए। मनसः पतिः–मन पर स्वामित्व रखना चाहिए। मन स्वधीन रहना चाहिए।

(14)

5 **ऋषिः-य.प.**

136 **परिदिव्यानि मर्मशद विश्वानि सोम पार्थिवा।**

वसूनि याक्षस्मयुः।।8।।

हे (सोम) सोमः (दिव्यानि) दिव्य तथा (पार्थिवा) पृथ्वी के ऊपर का (विश्वानि वसूनि) सब प्रकार के धन (परि मर्मशत) सब

प्रकार से लेकर अस्मयुः याहि) हमारे पास आओ।।8।।

द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के ऊपर के सब धन लेकर तू हमारे पास और तू हमारे साथ रहा।

(17)

6 ऋषिः-य.प.।

152 अति त्री सोम रोचना रोहन न भ्राजसे दिवम्।

इष्णनत्सूर्य न चोदयः।।5।।

हे (सोम) सोमः तेरी (त्री रोचना) तीनों लोकों के ऊपर (अति रोहन दिवं न भ्राजसे) रहकर जैसा द्युलोक को तेजस्वी करता है तथा (इष्णन सूर्यं न चोदयः) इच्छापूर्वक सूर्य को भी प्रेरित करता है।।5।।

सोम में अत्यंत मधुर रस रहता हैं, अतः सब आनंद देने वाले पदार्थों में अधिक आनंद देता है।।5।।

(22)

7 ऋषिः-य.प.।

188 एते पृष्ठानि रोदसी-र्विप्रयत्तो व्यानशुः।

उतेदमुत्तमं रजः।।5।।

(एते) ये सोमरस (रोदस्योः पृष्ठानि) द्युलोक और भूलोक के पृष्ठ भागों पर (विप्रयत्तः) विविध प्रकार से जाते हैं और (व्यानशुः) सब स्थानों पर फैलते हैं। (उत इदं उत्तमं रजः) और इस उत्तम द्युलोक में भी फैलते हैं।।5।।

सोमरस भूमि, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में फैलते हैं और वहाँ प्राप्त होते हैं। सोमरसों का प्रभाव तीनों लोकों में होता है।।5।।

(25)

8 ऋषिः-य.प.। ऋषिः-दृत्सहव्युत आगस्त्यः

208 विश्वा रूपाण्याविशन पुनानो याति हर्यतः।

यत्रामृतास आसते।।4।।

(विश्वा रूपाणि आविशन) सब रूपों में प्रविष्ट होकर (पुनानः) पवित्र हजोकर यह सोम (हुर्यतः याति) सुशोभित होकर जाता है (यम) जहाँ (अमृतासः आसते) देव रहते हैं।।4।।

जहाँ देव बैठते हैं उस यज्ञ के स्थान में अनेक रूपों से शुद्ध हुआ यह सोमरस जाता है। यज्ञ में सब देव आकर बैठते हैं, वहाँ यह सोम भी जाकर अपने स्थान में बैठता है। यज्ञ में सोम के लिए नियत स्थान रहता है।।4।।

(26)

9 ऋषिः-इध्मवाहो दार्दच्युतः। य.प.।

213 तं वेधां मेधयाहयन पवमानमधि द्यवि।

धर्णसि भूरिधायसम्।।3।।

(वेधां) सबको धारण करने वाले (धर्णसि) सबसे आधार रूप (भूरिधायसं) बहुतों के धारण कर्ता (तं पवमानं) उस सोम को (ऋधि–द्यवि) द्युलोक के पास (मेधया अहन्) बुद्धि से पहुँचाते हैं।।3।।

सोम सबका आधार, सबका धारण करने वाला, सबको आश्रय देने वाला है। उसको द्युलोक के समीप यज्ञ कर्ता लोक अपनी बुद्धि से पहुँचाते हैं। सोमबल्ली पहाड़ों पर हिमालय में सबसे उच्च स्थान में होती है। अतः वह स्वर्ग में रहती है। अतः ऐसा कहा है।।3।।

(33)

10 ऋषिः-त्रित आप्त्यः। य.प.।

256 तिस्त्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।

हरिरेति कनिक्रदत।।4।।

(तिस्मः वाचः उदीरते) ऋ. यजु सामवेद ये तीन वेदों के मंत्र बोले जाते हैं (धेनवः गावः मिनन्ति) दूध देने वाली गौवें शब करती हैं। (हरिः कनिक्रदत एति) हरे रंग का सोमरस शब करता हुआ पात्र में जाता है।।4।।

यज्ञ के तीनों वेदों के मंत्र बोले जाते हैं। गौवे अपना दूध यज्ञ में अर्पण करने के लिए शब करती है, उस समय सोमरस शब्द करता हुआ पात्र में किया जाता है। यह यज्ञ स्थान का वर्णन है। यज्ञ के स्थान में ऐसा होता ही है।।4।।

11 अमि ब्रहीरनूषत यहीर्ऋतस्य मातरः।

मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुभ।।5।।

257 ऋषिः-य.प.।

(ब्रह्मीः) ब्राह्मणों से प्रेरित हुई (यद्वीः) बड़ी (ऋतस्य मातरः) यज्ञ को निर्माण करने वाली (अनि अनूषता) ऋचाएँ बोली जाती हैं। (दिवः शिशु) द्युलोक के पुत्र सोम को (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध किया जाता है।।5।।

ब्राह्मण वेद मंत्र बोलते हैं और द्युलोक में उत्पन्न हुए इस सोम के रस को शुद्ध करते हैं।।5।।

263 अमीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः।

चारु प्रियतमं हविः।।5।।

(ई) इस सोम का (ऋतस्य विष्टपं) यज्ञ के स्थान में (पृश्निमातरः) मरुत (अमि–दुहते) रस निकालते हैं। यह सोमरस (प्रियतमं चारु हविः) अत्यंत प्रिय और सुन्दर हवनीय है।।5।।

यज्ञ के स्थान में मरुत इस सोम का रस निकालते हैं। यह सोमरस देवों के लिए अत्यंत प्रिय और सुन्दर हवनीय पदार्थ हैं।।5।।

(35)

13 ऋषिः-प्रभूवसुराङ्गिरसः। य.प.।

270 विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः।
पुनानस्य प्रभूवसोः।।6।।

(धर्मणः पतेः) धर्म के पावन करने वाले (पुनानस्य) शुद्ध किए जाने वाले (प्रभुवसोः) बहुत धन वाले (यस्य व्रते) जिस सोम के व्रत में (विश्वाः जनः) सब लोक अपने मन को (दाधार) धारण करते हैं।।6।।

सोम यज्ञ में सबके मन लगे रहते हैं। क्योंकि यह सोम धर्म का पालन करता है, शुद्ध होने वाला यह सोच पर्याप्त धन रखता है जिससे यज्ञ होता है।।6।।

(36)

14 ऋषिः-य.प.

273 स नो ज्योतीषि पूर्व्य पवमान वि रोचय।
ऋत्वे दसाय नो हिनु।।3।।

हे (पूर्व्य) पुराकाल से चले आए (पवमान) सोमः (नः ज्योतीषि) हमारे तेजस्वी स्थान (वि रोचय) विशेष प्रकाशित कर। तथा

(क्रत्वे) यज्ञ के लिए तथा (दक्षाय) बल प्राप्त करने के लिए (नः हितु) हमें प्रेरित कर।।3।।

(38)

15 **ऋषिः-रहूगण आङ्गिरस। य.प.।**

287 **एषस्य यद्यो रसो उवं चष्टे दिवः शिशुः।**

य इन्दुवरिमाविशत्।।5।।

(एषः सः) वह यह (मद्यः रसः) आनंददायक सोमरस (अव चष्टे) सर्वत्र देखता है। यह सोमरस (दिवः शिशुः) द्युलोक में उत्पन्न हुआ है, (यः इन्दुः) जो तेजस्वी सोमरस (वारं आविशत्) छाननी में से छाना जाता है।।5।।

सोमरस पीने वाले को आनंद देता है। वह तेजस्वी होने से चमकता रहता है। यह सोम उच्च स्थान में उत्पन्न होता है, इस कारण वह द्युलोक का पुत्र कहा जाता है। यह चमकता हुआ छाननी में से छाना जाता है।।5।।

(39)

16 **ऋषिः-बृहन्मतिशाङ्गिरसः। य.प.।**

290 **परिग्कृण्वभनिष्कृतं जनाय यातयमिषः।**

वृष्टिं दिवः परि स्त्रव।।2।।

(अनिष्कृतं परिष्कृण्वन) असंस्कृत को संस्कृत करके (जनाय) यज्ञ करने वाले यजमान के लिए (इषः यातयन) अन्न देते हुए (दिवः वृष्टिं परिष्मव) द्युलोक से वृष्टि गिरा दो।

(41)

17 **ऋषिः-मेध्यातिथिः काण्वः। य.प.।**

303 **शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शृष्मिणः।**
चरन्ति विद्युतो दिवि।।3।।

(वृष्टेः हवनः इव) वृष्टि के शब्द के समान (शुष्मिणः पवमानस्य) बलवान सोमरस का शब्द (श्रृण्वे) में सुनता हूँ। (दिवि विद्युतः चरन्ति) द्युलोक में बिललियाँ चमक रही हैं।।3।।

(48)

18 **ऋषिः-कविर्यार्गवः। य.प.।**

346 **अधां हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे।**
अमिष्टवृद्धिचर्षविः।।5।।

(अध) अब (विचर्षविः) यज्ञ कर्मों का विशेष रीति से करने वाला (अभिष्टिकृत) याजकों के इष्ट फल देने वाला और (इन्द्रिय हिन्वानः) अपनी आत्मशक्ति को प्रेरित करने वाला यह सोम (ज्यायः महित्वं आनशे) अधिक महत्व का स्थान यज्ञ में प्राप्त करता है।।5।।

यज्ञ में सोम का विशेष स्थान रहता है। यह सोम यज्ञ के कार्य करता है, यज्ञ करने वालों को इष्ट फल देता है। इस कारण सोम का यज्ञ में विशेष महत्व है।

(62)

19 **ऋषिः-जगदग्रिर्भार्गवः। य.प.।**

445 **तं त्रिपृष्ठे त्रिबन्धुरे रथे युञ्जत्ति यातवे।**
ऋषीणां सप्त धीतिभिः।।17।।

(त्री-पृष्ठे) तीन सवनों के (त्रि बन्धुरे) तीन वेदों के (ऋषीणां रथे) ऋषियों के यज्ञ रूपी रथ में (सप्त धीतिभिः) सात छंदों के

द्वारा (यातवे) देवों के पास जाने के लिए ऋषि इसकी योजना करते हैं।।17।।

सोमरस की यज्ञ के रथ में बिठवाते हैं और उसकी इन्द्राणि देवों के समीप पहुँचाते हैं। उस समय सात छंदों के मंत्र बोले जाते हैं। तीन सवनों में तीन स्वरों में वेद मंत्र बोले जाते हैं।

20 ऋषिः-य.प.।

453 पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्रामिरूतिभिः।

अभि विश्वानि काव्यां।।25।।

हे (सोम) सोमः (अग्रियः) तू मुख्य है, (पित्राभिः ऊतिमिः) शक्ति युक्त सरअणोके तथा (वाचः पवस्व) हमारी स्तुति रूप वाणियों के साथ यज्ञ में छाना जा और (विश्वानि काव्या अग्नि पवस्थ) सब प्रकार की स्तुतिरूपी काव्यों को प्राप्त हो।।25।।

21 ऋषिः-य.प.।

454 त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन।

पवस्व विश्वभेजय।।26।।

हे (विश्वमेजय) विश्व में प्रेरणा करने वाले सोमः (अग्रियः) मुख्य तू है, (वाचा ईरयन) वाणी को प्रेरित करता हुआ (समुद्रिया अपः) अन्तरिक्ष के जलों को चलाने की प्रेरणा कर और (पवस्व) रस उत्पन्न कर।।26।।

सोम स्तुति करने वाले याजकों को स्तुति करने की प्रेरणा देता है, और जलों के अंदर आकर अपने में मिश्रित होने की प्रेरणा देता है।

(63)

22 ऋषिः-निधुविः काश्यपः। य.प.।

466 अयुक्त सर एतशं पवयानो मनावधि।

अन्तारेक्षेण यातवे।।8।।

(पवमानाः) सोमरस (अन्तरिक्षेण यातवे) अन्तरिक्ष में से जाने के लिए (मनौ अधि) मनुष्य में (सूरः एतशं अयुक्त) सूर्य के घोड़े के साि मिलता है।।8।।

सूर्य के किरणों से सोमरस अन्तरिक्ष में गमन करता है। सूर्य के किरण उस सोमरस को लेकर अन्तरिक्ष में जाते हैं। सूर्य किरणों के द्वारा सोमरस अन्तरिक्ष में जाते हैं।।8।।

23 ऋषीः-य.प.।

485 पवमाना दिवस्य-र्यन्तरिक्षादसृक्षत।

पृथिव्या अधि सानवि।।27।।

(पवयान्तः) रस निकाले सोम (दिवः परि) द्युलोक के ऊपर से (अन्तरिक्षात) अन्तरिक्ष से (पृथिव्या सानवि अधि) तथा पृथ्वी पर के ऊँचे भाग से (असृक्षत) तैयार किए जाते हैं।।27।।

द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी के ऊँचे पर्वत के जैसे स्थान से सोम लाया जाता है। सोम वनस्पति पर्वत जैसे ऊँचे स्थान में आती है, अतः यह सोम ऊँचे स्थान से ही लाया जाता है।।27।।

24 ऋषिः-कश्यपो मारीचः। य.प.।

518 ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः।

पवस्व सूर्यो दृशे।।30।।

हे (सोम) सोमः तू (कविः) ज्ञानी तथा (सूर्यः दृशे) सूर्य के समान तेजस्वी (ऋधक) होकर (संजग्मानः) साथ रहकर (दिवः) द्युलोक में से (दृशे पवस्व) दर्शन करने के लिए रस निकालो।।30।।

सोमरस ज्ञान बढ़ाता है, सूर्य के समान चमकता है, द्युलोक से प्रकाश देने के समान तेजस्वी होता है।।30।।

(65)

25 ऋषिः-भृगुर्वारूणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। य.प.।

521 आ पवमान सुष्टुति वृष्टि देवेभ्यो दुवः।
इषे पवस्व संयतम्।।3।।

हे (पवमान) सोमः (सुष्टति वृष्टि) उत्तम स्तुति के साथ की हुई सोमरस से सेवा के (देवेभ्यः दुवः) तथा देवों से संरक्षण प्राप्त करने के लिए तथा (दूषे) अन्न के लिए (संयतं पवस्व) तू अपना रस देवो।।3।। सोमरस देवों को समर्पण करने से देवों की सेवा होती है, देवों से संरक्षण होता है तथा सोमरस से अन्न भी प्राप्त होता है।।3।।

26 ऋषिः-य.प.।

534 राजा मेधामिरीयते पवमानो अनावधि।
अन्तरिक्षेण यातवे।।16।।

(मनौ अधि) यज्ञ के अन्दर (पवमानः) सोम (राजा) राजा (मेधाभिः ईयते) स्तुति मंत्रों से गाया जाता है। यह (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष से द्रोण कलश में (यातवे) जाने के समय गान होता है।।16।।

27 ऋषिः-य.प.।

547 आ मन्दमा वरेण्य-मा विप्रमा मनीषिणम।
पान्तमा पुरुस्पृहम।।29।।

(मन्द्रं) आनंद देने वाले (वरेण्यं) श्रेष्ठ (विप्रं) ज्ञान देने वाले

(मनीषिणं) बुद्धि को बढ़ाने वाले (पुरुश्पृहं पान्तं) अनेकों द्वारा प्रशंसित और सुरक्षा करने वाले तुम्हे हम स्वीकारते हैं।।29।।

28 ऋषिः-य.प.।

548 आ रयिमा सुचेतुन-मा सुकतो तनूष्वा।
पान्तमा पुरुस्पृहम।।30।।

हे (सुक्रतो) उत्तम रीति से यज्ञ करने वाले (रमि आ) तेरे से हम धन चाहते हैं (सुचेतुन आ) उत्तम ज्ञान चाहते हैं (तनुषा आ) पुत्र पौत्रादिको को चाहते हैं (पुरुस्पृहं पान्तं) सब लोकों ने प्रशंसित उत्तम सुरक्षा करके संरक्षण करने के सामर्थ्य को चाहते हैं।।30।।

(66)

29 ऋषिः-शतं वैखानसाः। य.प.।

551 परि धमानि यानि ते त्वं सौमासि विश्वतः।
पवमान ऋतुभिः कवे।।3।।

हे (पवमान सोम) रस निकाला गया सोमः (ते) तेरे (यानि धामानि) जो स्थान (विश्वतः परि) सब विश्व में (असि) है। हे (कवे) ज्ञानी सोमः वे स्थान (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार हैं।।3।।

सोम के जो स्थान देश में अनेक हैं, वे ऋतुओं के अनुकूल वहां हैं। अमुक ऋतु में अमुक स्थान में सोम प्राप्त होता है।।3।।

30 ऋषिः-य.प.।

568 अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम।।20।।

(अग्निः ऋषिः) अग्नि ऋषि अर्थात् ज्ञानी या ज्ञान देने वाला

है। (पांचजन्यः पवमानः पुरोहितः) पंचजनों का हित करने वाला पवगान सामने रखा है। (तं महागमं ईयते) उस बड़े घर वाले अग्नि की हम स्तुति गाते हैं।।20।।

अग्नि अपने प्रकाश से सबका ज्ञान कराता है, पंचजनों का हित करने वाला पचमान सोम यज्ञ में अग्रस्थान में रखा है। उसकी हम स्तुति करते हैं। अग्नि की उष्णता शरीर में रहने से मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है। शरीर ठण्डा हो जाएगा तो ज्ञान नहीं होता। अग्नि का यह महत्व है।।20।।

31 ऋषिः-य.प.।

572 पर्वमान ऋतं बृह-च्छुकं ज्योतिरजीजनता
कृष्णा तमांसि जङ्धनत।।24।।

यह (पवमानः) सोम (बृहत ऋतं शुक्रं ज्योतिः) बड़ा सत्य तेजस्वी प्रकाश (अजीजनत) उत्पन्न करता है और (कृष्णा तमांसि जघनत काले युधकार का नाश करता है।।24।।

सोम प्रकाश से चमकता है, इस कारण यह सोम अंधेरे का नाश करके प्रकाश देता है।।24।।

33 ऋषिः-य.प.।

578 यस्यते द्युम्रवत पयः पवमानामृतं दिवः।
तेन नो मृरु जीवसे।।30।।

(यस्य ते) जिस तेरा (द्युमवत पथः) तेजस्वी सोमरस रूपी दुध जैसे अन्न (दिवः आमृतं) द्युलोक से लाया है। हे (पवमान) सोमः (तेन) उस सोमरस से (जीव से) दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए (नः मृद्ध) हमें सुखी रख।।30।।

सोम स्वर्ग से अर्थात् हिमालय के शिखर के ऊपर से लाया

है। उस सोमरस के पान से दीर्घ जीवन तथा सुख प्राप्त करें।।30।।

(67)

33 ऋषिः-पवित्र आङ्गिरसो वा वसिष्ठो वा उमौवा।
दे.-पवमानोऽग्निः छन्दः-गायत्री।

602 यत ते पवित्रमर्चिव-दग्ने तेन पुनीहि नः।
ब्रह्मसवैः पुनीति नः।।24।।

हे (अग्ने) अग्नेः (यत ते अत्तरा) जो तेरे अंदर (अर्चिषि पवित्र) पवित्र करने वाला तेज (विततं) फैला है (तेन नः ब्रह्म पुनीति) उसके द्वारा हमारा ज्ञान पवित्र कर।।24।।

34 ऋषिः-य.प. छन्दः अनुष्टुप्।

605 पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीति मां।।27।।

(देवजनाः मा पुनत्तु) दिव्य जब हमें पवित्र करें (वसवः) अष्टवसु (धिया) बुद्धि द्वारा हमें (पुनत्तु) पवित्र करें। (विश्वेदेवाः मा पुनीत) सब देव मुझे पवित्र करें। (जातवेद) जातवेदः (मा पुनीति) मुझे पवित्र कर।।27।।

(68)

35 ऋषिः-वत्सप्रिभलिन्दनः। दे.-पवमानः सोमः।
छ. गायत्री

614 स मातरा विचरन वाजर्यन्नपः प्रमेधिरः
स्वधया पिन्वते पदमे।

अशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः संजामिमिर्नसते

रक्षते शिर।।4।।

(मेधिरः) बुद्धिमान (सः) वह सोम (मातरा) माता रूपी द्यु और पृथिवी (विचरन) के ऊपर से विचरण करता है, और (अपः वाजयन) जलों को प्रेरित करता है। यह (स्वधया) अपनी शक्ति से (पदं प्रपिचते) अपना पांव प्रेरता है। (अंशुः) यह सोम (भवेन) पिपिशे) जब के अन्न से पुाष्ट होता है। यह सोम (नृभिः जामिमिः) ऋत्विजों की अंगुलियों से (सं नसते) मिलकर रहता है (शिरः रक्षते) सब भूतमाम का रक्षण करता है।।4।।

36 ऋषिः-य.प.।

615 स दक्षेण मनसा जायते कवि ऋर्तस्य शर्मो निहितोयमा परः।

यूना हं सन्ता प्रथमं वि जंज्ञतु गुहा हितंजनिम नेममुद्यतम्।।5।।

(दक्षेण मनसा) दक्ष मन से (संजायते) सम्यक रीति से यह सोम उत्पन्न होता है। यह (ऋतस्य गर्भः) यज्ञ का उत्पत्ति स्थान है। यह (यमा) नियम के अनुसार (परः निहितः) ऊपर के स्थान में रखा है। (यूना) ये दोनों, सूर्य और सोम (प्रथमं विजज्ञतः) प्रथम मालूम हुए। (गुहा हितं) गुप्त स्थान में रहा इनका (जनिम) जन्य (नेमं उद्यतं) नियमानुसार प्रकाशित होता है।।5।।

37 ऋषिः-य.प.।

619 अयंदिवइंयर्तिविश्वमा रजः सोमः पुनानः
कलशेषुसीदति।

अदिर्गोमिर्भृज्यते अद्रिनिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवोविदत
प्रियम्।।9।।

(अयं सोमः) यह सोम (दिवः) द्युलोक से (विश्वं रजः) सब

जल (आ इयर्ति) पृथ्वी पर प्रेरित करता है। (पुनानः सोमः) शुद्ध किया हुआ सोम रस (कलशेषु सीदति) यज्ञ के कलशों में बैठता रहता है। (अद्रिभिः सुतः) पत्थरों से कूटकर निकाला यह रस (पुनानः इन्दुः) छाना जाने पर यह सोम रस (प्रियंवखिः) प्रिय धन (विदत) प्राप्त करता है। अर्थात् स्तुति करने वालों को—ऋत्विजों को देता है।।9।।

(69)

38 ऋषिः-हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। दे. पवमानः सोमः। छ. जगती

621 इषुर्नधन्वनप्रति धीयते मति-र्वत्लोन मातुरूपं सर्ज्यूषनि।
उरुधारेण दुहे अग आय-अस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते।।1।।

हे (सोम) सोमः तू (परिषिच्यमानः) जल या गौवे दूध से मिलाया हुआ (एव) ही चित्रतमं वयः दधत) अनेक प्रकार के अन्न को धारण करके (पवस्व) हमें दे। (अद्वेषे) द्वेष रहित (द्यावः पृथ्वी) द्युलोक और पृथ्वी को हम (हुवेग) बुलाते हैं। (देवाः) देव (अस्मे सुवीरं रविं धत्त) हमारे लिए उत्तमवीर पुत्रों युक्त धन दे।।10।।

620 एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधिच्यिमतमं पवस्व।
अदेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयियस्मे सुवीरम्।।10।।

39 ऋषिः-य.प.।

621 इस इन्द्र की (मतिः) स्तुति (प्रति धीयते) हमारे द्वारा की जाती है। (न) जिस प्रकार (इषुः धन्वन) बाण धन्द्रपय पर लगाया जाता है। अथवा (वत्सः न) जैसा पुत्र (मातुः ऊधनि उप सर्जि) माता की गोद में बैठता है। (उरुधारा इव) दूध देने वाली गौवे समान (अग्रे आमती) समीप आने वाली (दुहे) दूध देती हैं (अस्य

व्रतेषु अपि) इसके व्रतों में भी (सोम) सोम (इष्यते) प्रेरित किया जाता है।।1।।

1. मतिः प्रति धीयते—इन्द्र की स्तुति की जाती है, स्तुति करने वालों के मन में दूसरा कोई विषय नहीं होता।

2. इषु धन्वन न—जैसा बाण धनुष्य पर धारण करते हैं, उस समय बाण का लक्ष्य निश्चित रहता है। उस प्रकार देव भी स्तुति करने के समय स्तुति करने वाले का ध्यान देवता के ऊपर ही रहना चाहिए।

3. वत्सः ऋतुः ऊधनि उपसर्गि—पुत्र माता के गोद में बैठता है। उस समय पुत्र का ध्यान माता के ऊपर ही होता है। वैसा उपासना करने वाले का ध्यान उपास्य पर ही होना चाहिए। इधर—उधर मन भटकना योग्य नहीं है।।1।।

(74)

40 ऋषिः-कक्षीवान् दैर्धतमसः। य.प.।

669 दिवो यः एकम्मो धरुणः स्वातत।
आपूर्णो अशुः पर्येति विश्वतः।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता।
समीचीने दाधार समिषः कविः।।2।।

(दिवः स्कंभः) द्युलोक का आधार स्वयं (धरुणः) सबका धारण कर्ता (स्वाततः) सर्वत्र व्याप्त है (सः) वह सोम (इमे मही रोदसी) ये बड़े द्यु और पृथ्वी को मिलकर धारण करता है। यह (कविः) ज्ञानी सोम (इजः सवाधार) अन्नों को धारण करता है।।2।।

(75)

41 ऋषिः-कविर्भार्गवः। य.प.।

678 ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं

वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।

दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं?

नाम तृतीयमधि रोचने दिवः।।2।।

(ऋतस्य जिह्वा) यज्ञ की जिह्वा रूप यह सोम (प्रियंमधु पवते) प्रिय मधुर रस देता है। (वक्ता) स्तुतियों को बोलने वाला यजमान (अस्याः धियः) इस बार्म का यज्ञ के कर्म का (पतिः) पावन करने वाला (अदाम्य न दबने वाला होता है।

(पुत्रः) यजमान (पित्रोः अपीच्यं नाम) माता–पिता का गुप्तत्तम (अधि दधाति) जानता है। यह (तृतीयं नाम) तीसरा नाम (दिवा रोचते अधि दधाति) द्युलोक को तेजस्वी करने वाले सोच का होता है।।2।।

42 ऋषिः-य.प.।

679 अव द्युतानः कलशो अधिक्रद

भृमिर्येकानः कोश आ हिरण्यये।

अमीमृतास्य दोहना अनुषता

ऽधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति।।3।।

(द्युतानः) तेजस्वी (नृभिः) ऋत्विजों ने (हिरण्यये कोशे) सुवर्ण के पात्र में (येमानः) रखा सोम होता है। (ऋतस्य) यज्ञ के समय (दोहनाः) रस निकालने वाले ऋत्विज (ई) रस सोम की (अग्नि अनुषत) स्तुति करते हैं। (त्रिपृष्टः) तीन सवनों में रहने वाला यह सोम (उषसः अधि विराजते हैं) उषाकाल में चमकता है।।3।।

(80)

43 ऋषिः-वसुमरिद्वाजः। य.प.।

702 सोमस्य धारा पवते नृचक्षस।
ऋतेन देवान हवते दिवस्परि।
वृहस्पते रवथेना वि दिद्युते।
समुद्रासो न सवनानि विव्य।।1।।

(सोमस्य धारा पवते) सोमरस की धाराएँ शुद्ध हो रही हैं। (नृचक्षसः) यज्ञकर्ताओं को देखने वाला सोम (ऋतेन देवान्) यज्ञ के द्वारा देवों को (हवते) हवन करता है (दिवस्चरि) द्युलोक के ऊपर पहुँचने के लिए (बृहस्पतेः) बृहस्पति के (खथेन) शब्दों के द्वारा (विदिद्युते) प्रकाशित होता है। (समुद्रासः न) समुद्रों के समान पृथ्वी को (सवनानि विव्यचुः) यज्ञ के स्तोत्र व्यापते हैं।।1।।

(पृथ्वी पर जैसे समुद्र व्याप्त रहे हैं, वैसे सोम के रस यज्ञ में व्याप रहे हैं।)

(81)

44 ऋषिः-वसुभरिद्वाजः। य.प.।

710 आ नः पूषा पवमानः सुरातयो
मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः।
वृहस्पतिमरुतो वायुरश्विना त्वष्टा
सविता सुयमा सरस्वती।।4।।

(सुरातयः) उत्तम दान देने वाले पूषा[1], (पवमानः) सोम[2] मित्र[3], वरुण[4], (सजोषसः) साथ रहने वाले वृहस्पति[5] मरुत[6], वायु[7], अश्विनो, त्वष्टा[8], सविता[10] तथा (सुयमा) उच्चरीति से नियमों का पालन करने वाली सरस्वती में देवताएँ (नः आ गच्छन्तु) हमारे पास आ जाय।।4।।

1. पोषण। 2. अपना रस। हमारा बल बढ़ाएँ। 3. मित्रवत्।

4. श्रेष्ठता। 5. ज्ञान। 6. युद्ध में विजय। 7. प्राणशक्ति। 8. नीरोग करें। 9. उत्तम कारीगर। 10. उत्पादक शक्ति। 11. इन्द्रिय।

45 ऋषिः-य.प. छ. त्रिष्टुप्।

711 उमे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे
अर्यमा देवो अदिति र्विधाता।
भगो नृशंस उर्व?न्तरिक्ष
विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त।।5।।

(विश्वं रचे) सर्वव्यापक (द्यावा पृथ्वी) द्युलोक और पृथ्वी ये (उमे) दोनों (अर्यमा) देवः) तथा अर्यमा देव (अदितिः) प्रकृति देवी विधाता देव, मग (नृशंसः उरु अंतरिक्ष मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यह विस्तृत अंतरिक्ष (विश्वेदेवाः) सब देव (पवमानं जुषन्त) सोम को सेवन करें।।5।।

विश्वमिन्वे उमे द्यावापृथ्वी–सर्वत्र व्याप्त द्यु और पृथ्वी ये दोनों देव।

अर्यना देवी–श्रेष्ठ और कनिष्ठ की परीक्षा करने वाला देव।

अदिति–मूल प्रकृति।

विधाता–सबको उत्पन्न करने वाला देव।

भग–ऐश्वर्यवान देव भाग्यवान, धनवान देव।

नृशंसः–मनुष्य जिसकी प्रशंसा करते हैं वह देव।

उरु अन्तरिक्ष–विशाल अन्तरिक्ष।

विश्वदेवाः–सब देव।

पवमान जुषन्त–वे सब देव सोमरस का सेवन करें।

(84)

46 ऋ. वाच्यः प्रजापतिः। य.प.।

792 **आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परितान्यर्षति।**
कृण्वन् त्सचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युष्य सं न सूर्यः।।2।।

(यः सोमः) जो सोम (अमर्त्यः) अमर होकर (विश्वानि अवनानि) इन सब भुवनों में (आतस्थौ) रहा है। वह (तान् परि अर्षति) उसमें जाता है। वह (इन्दुः) सोम देव्य जनों को (संचृतं) दिव्य भावों से संयुक्त करता है और (विचृतं) दुष्ट भावों से दूर (कृण्वन) करता है और (अमिष्टये) इष्ट फल प्राप्ति को लिए (सिषत्यि) यज्ञ में जाता है। जैसा (सूर्यः उषसं न) सूर्य उषा के साथ रहता है।।2।।

(85)

47 **ऋषिः-येनो भार्गवः। य.प.।**

732 **स्वादुः पवस्व दिव्यायजन्मसे स्वादुरिन्द्रायसोम जठरे स्णक्षरः।**
स्वादुर्मित्रय वरुणाय वायवे वृहस्पतये मद्युमाँ अदाम्यः।।6।।

हे सोमः तू (दिव्याय जन्मने) दिव्य जन्म वाले देवगणों के लिए (स्वादुः पवस्व) मीठा रस निकालो। (सुहवीतु नाम्ने इन्द्राय) प्रशंसनीय नाम वाले इन्द्र के लिए (स्वादुः) स्वादिष्ट रस देवो। (मित्राय वरुणाय वायवे वृहस्वतये) मित्र, वरुण, वायु, वृहस्पति आदि देवों के लिए (अदायन न दब जाने वाला होकर तू (मधुमान) मधुर रस देने वाला है।।6।।

(86)

48 **ऋषिः-अकृष्टा भाषाः। य.प.।**

743 **विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः**

प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवे।

यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः।

सत्ता नि योनाकलशेषु सीदति।।5।।

हे (विश्वचक्षः) सबके निरीक्षक सोमः (प्रभोः सतः ते) प्रभु रहने वाले तेरे (ऋम्वसः केतवः) बड़े–किरण (विश्वा धामानि) सब स्थानों में (परियत्ति) जाते हैं। हे (सोम) सोमः (व्यान्तशिः) व्यापक होने वाला तू (धर्मभिः पवस) अपने गुण धर्मों के साथ अपने से रस देते हो तथा (विश्वस्य भुवनस्य पतिः) सब भुवनों का पावक होकर (राजासि) विराजता है।।5।।

49 ऋषिः-य.प.।

745 यज्ञस्थ केतुः पचते स्वध्वरः

सोमो देवानामुप यानि निष्कृतम्।

सहस्त्रधारः परि कोशमर्षति।

वृषां पविभयर्त्येति रोरुवत।।7।।

(यज्ञस्य केतुः) यज्ञ का प्रकाशक (स्वध्वरः सोमः) उत्तम यज्ञ करने वाला सोम (देवानां निष्कृतं) देवों के स्थान के प्रति (उपयाति) जाता है और वहाँ (पवते) रस देता है। (सहस्रधारः) सहस्त्रों धाराओं से (कोशं परि अर्षति) कवश में जाता है। (वृषां) रस देने वाला यह सोम (रोरुवत) शब्द करता हुआ (पवित्रं अत्येति) छाननी में से नीचे उतरता है।।7।।

50 ऋषिः-सिकता निवावरी। य.प.।

757 वृषा यतीना पवते क्विक्षणः सोमो अहः

प्रतरीतोषसो दिवः।

क्राणा सिन्धूनाकलशाँ अवीवरा-दिन्द्रस्य

हार्द्याविशन मनीषिभिः।।19।।

यह (सोमः) सोम (यतीनां वृषा) बुद्धियों को बढ़ाने वाले (विचक्षणः) विशेष रीति से देखने वाला (अद्धः) दिन का (उषसः दिवः) उषा तथा द्युलोक का (प्रतरीता) वर्धन करने वाला (पवते) रस देता है। सिन्धूनां काणा) उदकों का कर्ता (ककशान अवीवशत) ककशों में जाता है। (इन्द्रस्य हार्दि आविशन) इन्द्र के हृदय में प्रविष्ट होता है। (मनीषिभिः) बुद्धिवानों के द्वारा स्तुति किया जाता है।।19।।

51 ऋषिः-पृश्नियोऽजाः। य.प.।

766 तवेमाः प्रजादिव्यस्य रेतस

स्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि।

अयेद विश्व पवमान ते वशे

त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि।।28।।

(तव दिव्यस्य रेतसः) तेरे दिव्य वीर्य से (इमाः प्रजाः) ये सब प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं। (त्वं) तू (विश्वस्य भुवनस्य) सब भुवनों का (राजासि) स्वामी है। हे (पवमान) सोमः (अथ इदं विश्वं) और यह सब विश्व (त्वे वशे) तेरे आधीन हुआ है। हे (इन्द्रो) सोमः (त्वं) तू (प्रथमः) पहिला (धामधा असि) विश्व को धारण करने वाला हो।।28।।

52 ऋषिः-अकृष्टभाषादयत्रयः। य.प.।

770 स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत

तन्तुं तन्वानस्मिवृतं यथा विदे

नमत्रृतस्य प्रशिषो नवीयसीः
पतिर्जनी नामुप पाति निष्कृतम्।।32।।

(सः) वह सोम (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य के किरणों से (परिव्यत) अपने को घेरता है। (त्रिवृतं तत्तुं तन्वानः) तीन सवनों से मुक्त यज्ञ को फैलता है (यथा विदे) यह कार्य करना वह जातना है। (ऋतस्य नवीयसीः प्राशेषः नयन) यज्ञ की नवीन उत्तम इच्छाएँ पूर्ण करता है। (जनीनां पतिः) याजकों की धर्मपत्नीयों का यह स्वामी सोमरस (निष्कृतं उपयाति) अपने पात्र में जाकर रहता है।।32।।

53 ऋषिः मौमोऽत्रिः।

781 अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते
ऋतु रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते,
सित्थोरुच्श्वास पतयन्तमुक्षणं
हिरण्य पावाः पशुभासु गृम्णते।।43।।

ऋत्विज यज्ञ के समय सोमरस को गौवे दूध के साथ (अञ्जते) मिलाते हैं, (व्यञ्जते) अनेक प्रकार से मिलाते हैं। (समञजते) योग्य रीति से मिलाते हैं। (क्रतुं रिहन्ति) यज्ञ में समर्पित पदार्थों को देव स्वाद लेते हैं। (मधुनः अभ्यञ्जते) मीठे दूध के साथ मिलाते हैं। (सिन्धोः उच्छवासे) नदी के जल में (पतयत्तं उक्षण) मिश्रित होने वाले (हिरण्यपावाः) सुवर्ण से शुद्ध होने वाले सोम को (पशु) देखने वाले को (आसुगृम्णते) इन जलों में प्राप्त करते हैं।।43।।

(90)

54 ऋषिः-वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। दे.-य.प.। छ-त्रिष्टुप्।

812 अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधा-माङ्गषाणामवावशत्तवाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून वि रत्नधादयते वायाणि।।2।।

(त्रिपृष्णं तीन स्थानों में रहने वाले (वृषणं) वर्षा करने वाले (वयोधां) अन्न का दान करने वाले (आगूषाणां) स्रोताओं की सोम की (वाणीः) स्तुतियाँ (अभि वावशत्त) चल रही है (वना वसानः) जल में रहने वाला (वरुणः न) वरुण के समान (सिन्धून) नदी के जलों के साथ मिश्रित होकर रहता है। (रलघा) रत्नों को धारण करने वाला सोम (वार्याणिदमते) धनों को देता है।।2।।

55 ऋषिः-य.प.।

814 उरुगव्यूतिरमर्यानि कृण्वन त्समीचीन आ पवस्वा पुरधी।
अपः सिषास भुषसः स्व दर्गाः संचित्रऋदो महो
अस्मभ्यं वाजयन।।4।।

हे सोमः (उरुगव्यूतिः) विस्तीर्ण मार्ग से जाने वाला (अभयानि कृण्वन) नि र्भयता करने वाला तू। (पुरंधी सभी चीने) द्यावापृथ्वी को परस्पर सहायक करके (आ पवस्व) तू अपना रस दे। (अपः) जल प्रवाह (उषसः) उषाए (स्वः) सूर्य तथा (गाः) सूर्य किरणों को (सिषासन्) अपने पोषण करने के लिए रखता हुआ (सं चित्रऋदः) शब्द करता है। (अस्मभ्यं) हमारे लिए (महः वाजान्) बड़ा अन्न देने की इच्छा करता है।।4।।

(91)

56 ऋषिः-कश्यपो मारीचः। य.प.।

822 एवापुनानो अपः स्व?र्गः अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि।
शं नः क्षेत्रगुरु ज्योर्तींषिसोम ज्योङ्गः सूर्ये दृशयोरीहि।।6।।

हे (सोम) सोमः (एव) इस प्रकार (पुनानः) शुद्ध होता हुआ तू

(अस्मभ्यं) हमारे लिए (अपः रिरीहि) जल दे। (स्वः गाः) स्वर्ग, गौवें (भूरि तोका तनवानि) बहुत पुत्र पौत्र दे। (नः) हमारा (क्षेत्रं) स्थान) (शं) सुखदायक कर। हे (सोम) सोमः (ज्योतीषि) इन नक्षत्रों को (ऊरु) विस्तीर्ण कर। तथा (नः हमारे लिए (सूर्य) सूर्य के (ज्योक) देखने के लिए (दृशये कुरह) दर्शनीय कर।।6।।

(94)

57 **ऋषिः-कण्वो द्यौरः। य.प.।**

837 **श्रिये जातः श्रिय आ निरियामश्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति।**
श्रियं वसाना अमृतत्त्वमायन भवन्ति सत्या समिथा
मित द्रौ।।4।।

वह सोम (क्षिये जातः) संपत्ति बढ़ाने के लिए उत्पन्न हुआ है। (श्रिये आ निरिमाय) धन के लिए वह यज्ञ में जाता है। यह (जरितृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिए (श्रियं वयः) धन और अन्न (दधाति) देता है, (श्रियं वसायः) शोभा को धारण करने वाले स्तुति करने वाले ऋत्विज (अमृतत्त्वं आयन) अमरपन को प्राप्त करते हैं। उस (मितद्रो) नियमपूर्वक आक्रमण करने वाले सोम में (सामेधा) युद्ध (सत्या भवन्ति) सत्य होते हैं।।4।।

(95)

58 **ऋषिः-प्रस्कण्वः काण्वः। य.प.।**

840 **हरिः सृजानः पथ्यामृतस्ये-यर्ति चाचमरितेव नावम्।**
देवो देवानां गृक्षानि नामा-ऽविष्कृणोति त्रर्हिषि प्रवास।।2।।

(सृजानः हरिः) रस निकाला हरे रंग का सोम (ऋतस्य) यज्ञ की (पथ्यां वाचं) मार्ग दर्शक स्तुति रूप वाणी को (इयर्ति) प्रेरित करता है, (अत्तिा नावं इव) नौका चलाने वाला जैसा नौका को

चलाता है देवः) तेजस्वी यह स्पेत्र (देवानां गुहनानि नाम) देवों के गुप्त नामों को (प्रर्वाच कहने के लिए (बर्हिषि) यज्ञ में (आविः कृणेति) प्रकट करता है।।2।।

(96)

59 ऋषिः-दैवोवासिः प्रतिर्दनः। य.प.।

848 सोमः पवते जनिता अतीनांजांनितादिवोजनिता पृथिव्यः।
जनिताग्रेर्जानिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः।

(सोमः पवते) सोम रस निकालकर देता है। यह सोम (मतीना जनिता) बुद्धियों का निर्माण करता है। (देवः जनिता) द्युलोक को निर्माण करता है। (पृथिकाः जनिता) पृथ्वी का निर्माण करता है, इन्द्र का निर्माण करता है और (उत विष्णोः जनिता) विष्णु का निर्माण करता है।।5।।

सोमरस द्युलोक, पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और विष्णु आदि को यज्ञ में लाता है और उपास्य रूप में यज्ञ स्थान में रहता है। यज्ञ में ये देव रहते हैं और सोम भाग को पूर्ण करते हैं। हर एक वैदिक यज्ञ में सब देवता उपस्थित रहते हैं। इस कारण यज्ञ स्थान देव स्थान कहलाता है।

60 ऋषिः-वासिष्ठो मृकीकः। य.प.।

867 अता ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यत्तिसुदुघाः सुधाराः।
हरिरानीत्रः पुरुवारो अप्स्व-चित्रऋदत् कजेश देवयूनाम्।।24

हे (सोम) सोमः (पवमानस्य ते) रस निकाले जाने वाले (रुचः) तेरे प्रकाश (योषा इव) स्त्री के समान (सुधारा सृदुघाः यत्ति) उत्तम धारा से दूध की धारा के समान जाते हैं। (हरिः) हरे रंग का यह सोम (आनीतः) ऋत्विजों ने लाया हुआ (पुरुवारः) बहुत बार

स्वीकार करने योग्य (अप्सु) जल में (देवयूनां कलशे) देवों की प्राप्ती की इच्छा करने वाले याजकों के यज्ञ स्थानीय कलश में (अचिक्रदत) शब्द करता हुआ जाता है।।24।।

(97)

61 ऋषिः-वासिष्ठ इन्द्र प्रगतिः। य.प.।

872 इन्दुर्देवानामुपं सख्यमायन त्सहस्मधारः पवते मदाय।

नृभिः स्तवानो अन्द्रधाम पूर्व-मगमिन्द्र महते सोमगाय।।5।।

(देवानां सख्यं) देवों के साथ मित्रता को (उप आपन) प्राप्त करके (सहस्रधारः इन्द्रः) सहस्त्रों धाराओं से यह सोमरस (मदाय) आनंद के लिए (पर्वत) रस देता है। (नृभिः स्तवानः) याजकों द्वारा स्तुति किया हुआ (पूर्व धाम) पुराने स्थान को प्राप्त करता है। (मठते सौमवाय) बड़े सौभाग्य के लिए (इन्द्रं अनु अगन) इन्द्र को प्राप्त करता है।।5।।

62 ऋषिः-वासिको व्याघ्रपाद। य.प.।

888 एवा न इन्दोअभि देववीति परि स्त्वनमो अर्णश्चमषु।

सोमो अस्मभ्यं काभ्यं बृहत्तं रयि दवातुवीरवत्तमुगम।।21।।

हे (इन्दो) सोमः (नः एव देववीति) हमारे हि यज्ञ में (नमः) द्युलोक से (अर्ण) जल (चमूषु परिस्भव) यज्ञ के कलशों में भर दे। पश्चात् (सोमः) सोमरस (काभ्यं) प्राप्त करने योग्य (बृहन्तं) बड़ा (उगं वीरवत्तं रयि) उग्र पुत्रयुक्त धन (अस्मभ्यं ददातु) हमें देवे।।21।।

(100)

63 ऋषिः-रेमसूनू कश्यपौ। य.प.। छ-अनुष्टुप।

953 पवमान महिश्रव श्चिेमिर्यासि रश्मिभिः।

शर्धन तमांसि जिघ्रसे विश्वानि दाशुषो गृहे।।8।।

हे (पवमान) पवित्र सोमः तू (चित्रोभिः रश्मिनि यासि) अपनी सुन्दर किरणों के साथ सर्वत्र जाता है और (महि श्रवः) महान यश को प्राप्त करता है, तू (दाशुषः गृहे) दाता के घर में जाकर (शर्कन) अपना पराक्रम दिखाते हुए तू (विश्वानि तमांसि जिहन से) संपूर्ण अंधकार को नष्ट करता है।।8।।

(101)

64 ऋषिः नहुषो मानवः। य.प.।

961 अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्यति।
पतिविश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे।।8।।

(पूषा) सबका पालन–पोषण करने वाला, (रभिः) धनवान, (मगः) ऐश्वर्यशाली (अयं सोमः) यह सोमरस (युनानः अर्षति) सबको पवित्र करता हुआ द्वनता है, (विश्वस्य भूमनः पतिः) संपूर्ण प्राणियों का पावक यह सोम (उन रोदसी वि अख्यत) दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक को प्रकाशित करता है।।7।।

(107)

65 ऋषिः-गोतमो राहूगणः। य.प.। द्विपदाविरष्टा।

1013 परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः ऋतुरिन्दुर्विचक्षणः।।3।।

(देवमादनः) देवों को आनन्दित करने वाला (ऋतुः) कर्मशील (इन्द्रः) तेजस्वी (विचक्षणः) बुद्धिमान (सुवानः) निचुला हुआ सोमरस (चक्षसे परि स्त्रवति) सबको देखने के लिए छाना जाता है।।3।।

66 ऋषिः-सप्तर्षयः। दे. य.प.। छ. प्रगाथः बृहती।

1022 प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृवि-स्च्छाकोशभकुरश्चतम।।12।।

हे (सोम) सोमः (देववीतये) देवगण तुझे पी सके, इसलिए (अर्णसा) जल से (प्रपिप्ये) उसी तरह तृप्त हो, कि जिस तरह (सिन्धुः न) समुद्र नदियों के जल से तृप्त होता है तथा तू (मदिरः न जागृविः) आनन्ददायक रस के समान उत्साह को देने वाला है।

(अंशोः पयसा) सोम के रस से (मधुश्चत कोश) मधु से भरे हुए कलश की ओर (अच्छ) सोधा जाता है।।12।।

(110)

67 ऋषिः त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः असदस्युः पौरुकुत्स्यः।

दे.-य.प.। छ-ऊर्ध्वमृष्वी।

1082 दिवः पीयूष पूर्ण्य यदक्थ्य महोगाहाद्विव आ

निरथुक्षत। इन्द्रमभि जायमान समस्वरन।।8।।

(यत दिवः) जो द्युलोक में देवों के पीने योग्य (पीयूष उक्थ्य) अमृत प्रशंसनीय है, वह (पूर्व्य) पहले से मिलने वाला अमृत (महः गाहात दिवः) महान और अगाध द्युलोक से (आ निरघुक्षत) निकाला गया है। उसके बाद (द्वन्द्र अमि) इन्द्र के आगे (जायमान) उत्पन्न हुए–2 सोम को (समस्वरन) यज्ञकर्ता स्तुति करते हैं।।8।।

(113)

68 ऋषिः-कश्यपो मारीचः। दे. य.प.। छ.-पङ्क्तिः।

1095 आ पवस्व दिशां पत आजीकात सोम मीढ्वः।

ऋत्वाकेने सत्येन श्रद्वया तपसा स्तुत इन्दयिन्दो परि स्तव।।2।।

हे (दिशां पते) दिशाओं के स्वामी और (भीड्वः) कामनाओं की वर्षा करने वाले (सोम) सोमः (ऋत–वाकेन) पवित्र वेद मंत्रों से

और (सत्येन) सत्य नियमों का पालन करने वाले ऋत्विजों ने (श्रद्धया) श्रद्धा और (तपसा) तप से युक्त होकर तुझे (सूत) स्तविक किया है, इससे तू (आजीकित आ पवस्थ) आर्जीक देश–(व्यास नदी के पास का प्रदेश) से आकर अरित होओ। हे (इन्द्रो) तेजस्वी सोमः (इन्द्राय परिस्भव) इन्द्र के लिए प्रवाहित होओ।।2।।

69 ऋषिः–य.प.

1100 यत्र ज्योतिरजस्त्र यस्मिन् लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन् मां धेहि पवयाना-ऽमृते लोके आक्षित
इन्द्रायेन्द्रो परिस्वभव।।7।।

हे (पवमान) पवित्र सोमः (यम अजस्त्रं ज्योतिः) जहाँ अखण्ड तेज है और (यस्मिन लोके स्वःहिता।) जिस लोक में सूर्य–स्वर्ग–सुख स्थित है, (तस्मिन्) उस (अमृते अक्षिते लोके) अमर और फक्षीण लोक में (मां धेहि) मुझे रखा। हे (इन्द्रो इन्द्राय परिस्भव) सोम। तू इन्द्र के लिये बहो।।7।।

70 ऋषिः–य.प.

1103 यत्र कामा निकायाश्च यत्र ब्रज्ञस्य विष्टपम्।
स्वधा च यम् तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधी-
न्द्रायेन्द्रा परिस्भव।।11।।

(1103) (यत्र कामाः निकायाः च) जिस लोक में श्रेष्ठ काम्यमान और प्रार्थतीय देवताएँ रहते हैं (यम बघ्रस्य विष्टपम्) जहाँ प्रतापी सूर्य का स्थान है। और (यम स्वधा च तृप्तिः च) जहाँ स्वधा के साथ दिया गया अन्न और तृप्ति है, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां तू मुझे अमर कर। हे (इन्द्रे) सोम (इन्द्राय परि स्भव) इन्द्र के लिए प्रवाहित होओ।।10।।

(114)

71 ऋषिः—य.प.।

1107 सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोभामि रक्षन
इन्द्रायेन्दो परि स्त्रव।।3।।

(सप्त दिशः नानासूर्याः) सात दिशाएँ ऋतु (सप्त होतारः ऋत्विजः) यज्ञ कर्ता सात ऋत्विज और (ये सप्त आदित्या देवाः) जो सात सूर्य हैं वे (सोम) सोमः (सत्सेतभिः नः अभि रक्ष) उनके साथ हमारी रक्षा कर। हे (इन्द्रो) सोमः (इन्द्राय परिष्भव) इन्द्र के लिए तू बहता रह।।3।।

दशम–मण्डल

सूक्त 191 मंत्र 1754

(1)

4 9 त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप।

7 **आ हि द्यावापृथिवी अग्र उमे सदा पुत्रो न मातरा**
ततन्य प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठा-ऽथा वह सहस्येह
देवान।।7।।

हे (अग्रे) अग्रेः तू (उमे द्यावाप्रथिवी) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक को (आ ततन्य) विस्तृत करता है। (न) जैसा (पुत्रः) पुत्र (मातरा) माता पिता को धनादि से (सदा) सदा मदत करता है। हे (यविष्ठ) तरुण पुत्र (उशतः अच्छ) इन्द्रा करने वालों के उद्देश्य से अर्थात् अपने माता पिता के उद्देश्य से (प्र–याहि) जाता है (अथ) और हे (सहस्य) बलवान अग्नेः (इह) इस हमारे यज्ञ में (देवान आ वह) देवों को ले आओ।।7।।

(2)

2 7 य.प.

14 **यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वाप-स्त्वष्टा यं त्वा**
सुजनिभा जजान।
पन्थामनु प्रविद्वान पितृयाण द्युभदगि समिधानो
विमाहि।।10।।

(यं त्वा) जिस तुझको (द्यावो पृथिवी) द्युलोक और पृथ्वी ने (जजान) उत्पन्न किया (यं त्वा आपः) जिस तुझे जल ने उत्पन्न किया (यं त्वा) जिस तुझे (सुजनिमा त्वष्टा जजान्) उत्तम जन्म वाले त्वष्टा ने उत्पन्न किया ऐसा तू (पितृयाणं) पितरों के जाने के

मार्ग को (अनु प्र विद्वान्) जानने वाला तू हे (अग्रे) अग्नेः (द्युमत) तेजस्वी होकर (सामिधानः) प्रदीप्त होकर (वि माहि) विशेष तेजस्वी होकर रहो।।7।।

(5)

3 7 त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

34 सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षु-स्तासामेकायिदभ्यं हुरोशात।
आपेर्हि स्कम्म उपजस्य नीके पथां विसर्गे धरुणे उतस्थौ।।6।।

(कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः) बुद्धिमान लोगों ने सप्त मर्यादाओं को निर्माण किया। (तासाम एकाम इत) उनमें एक थे। भी जो (अभिगात) प्राप्त होता है, वह (अंहुरः) पापी है। (आयोः) पाप से मनुष्य में (नीके) आदित्य–किरणों के विचरण मार्ग में और (घरुणेषु) और (घरुणेषु) जल के बीच में–त्रैलोक्य में (तस्थौ) स्थिर होकर विराजता है।।6।।

4 यथोपरि।

35 असच्च सच्च परमेव्योमन पथां
दसस्य जन्मअदितेरूपस्थें।
अगिहे नः प्रथमजा ऋतस्य
पूर्व आयुनि वृषभ्श्च धेनुः।।7।।

(परमे व्योमन) सर्वश्रेष्ठ, सब तरह से रक्षा करने वाले परमधाम अग्नि (असत च सत च) सृष्टि के पहले अस्त और सत–सूक्ष्म और सूक्ष्म जगत में है। (दक्षस्य जन्मन् अदितेः उपस्थे) वह अनतरिक्ष में सूर्य रूप से उत्पन्न हुआ है। (नः) वह हमने पहले तथा (ऋतस्य प्रथलजाः ह) यज्ञ के पहले निश्चय से उत्पन्न हुआ है, (पूर्वे आयुनि) पहले सृष्टि के आरंभ में (वृषमः च धेनुः) अग्नि ही बैल और गाय के रूप में उत्पन्न हुआ।।7।।

(9)

5 9 मिशिरास्त्वाष्टः सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा। आपः। गायत्री, 5 वर्धमाना गायत्री, 7 प्रतिष्ठा गायत्री, 8–9 अनुष्टुप्।

59 आपो हि हिष्ठा मयोभुव-स्ता न ऊर्जेदधातन।
महे रणाय वक्ष से।।1।।

हे (आपः) जलः (मयः भुवः हि आस्थ) तुम सुख को उत्पन्न करने वाले आधार हो। (ताः नः ऊर्जे दधातन) वे हमें उत्तम बल देने के लिए अन्न–संचय करें, (महे रणाय चक्ष से) पवित्र और रमणीय आत्मज्ञान के लिए हमें सुरक्षित रखें।।1।।

60 यो वः शिवतमो रस-स्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिप भातरः।।2।।

हे जलः (उशतीः इव भातरः) जैसे माताएँ बच्चों को दूध देती हैं, वैसे ही (वः यः) शिवतमः रसः) आपका जो कल्याणकारी रस ज्ञान और बल है (तस्य इह नः भाजयते) इसका हमें यहाँ सेवन कराइए।।2।।

61 तस्मा अर गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः।।3।।

हे (आपः) शान्तिप्रद जलः (वः यस्य क्षयाय जिन्वथ) आप जिस रोग के विनाश के लिए हमें प्रसन्न करते हो, (तस्मै अरं गमाम) उनके विनाश की इच्छा से हम तुम्हारा स्वीकार करते हैं; (नः च आ जनयथ) हमारी वेशवृद्धि करो।।3।।

62 शनो देपीरमिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरमि स्त्रवन्तु नः।।4।।

(देवीः आपः) दिव्य ज्ञान प्रकाशमय जल, (नः श भवन्तु) हमें

शान्ति–सुखदायक हों वे (अभीष्टये) अभीष्ट प्राप्ति के लिए हों। (पीतये भवन्तु) हमें आरोग्यदायक उदय पीने के लिए मिले। (वे (नः शं योः) हमें रोग और अवर्षण दूर करने से जिस (अभिस्भवन्तु) हमारे ऊपर क्षरित हो।।4।।

63 ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्।
अपो याचामि भेषजम्।।5।।

(अपः वार्याणां ईशाना) जल अभिलाषित वस्तुओं के स्वामी हैं; वे ही रोग निवारण आरोग्य करने में समर्थ हैं, वे ही (चर्षणीनां क्षयत्ती) प्राणीनाम को बसाने वाले हैं। (भेषजम याचामि) मैं उनसे औषधि की प्रार्थना करता हूँ।।5।।

64 अप्सु मे सोत्रो अब्रवी–दत्तर्विश्वानि भेषजा,
अग्नि च विश्वराभुवम्।।6।।

(अप्सु अत्तर्विश्वानि भेषजा) जल में सब औषधियाँ और (विश्वशंभुवं अग्निं च) सब जगत् को सुख देने वाला अग्नि भी है–यह (सोमः मे अब्रवीत) सोम ने मुझसे कहा।।6।।

65 आपः प्रणीत भेषजं वरुथं तन्वे 3 मम।
ज्योक च सूर्य दृशे।।7।।

हे (आपः) जलोः (मम तन्वे) मेरे शरीर के लिए (वरूथं भेषजं पृणीत) संरक्षक औषधि देओ, (ज्योक च सूर्य दृशे) जिससे निरोग होकर मैं बहुत काल तक सूर्य को देखता रहूँ।।7।।

66 इदमापः प्रवहत यत किं चं दुरितं मयि।
यद्वाहममदुद्रोह यद्वा रोप उतानृतम्।।88।।

(मयि यत किं च दुरितं) मुझमें जो दोष हो (यत वा अहं अभिदुद्रोह) अथवा जो मैंने द्रोह किया हो, (यत् वा शेपे) जो मैंने शाप दिया हो (उत अनृतं) जो असत्य भाषण किया हो (इदं आपः

प्रवहत) यह सब दोष ये जब मेरे शरीर से बाहर कर ले आवें और मैं शुद्ध बन जाऊँ।।8।।

67 **आपो अयान्व चारिषं रसेन समगस्महि।**
पयस्वानग आ गकिह तं मा सं सृज वर्चसा।।9।।

(अद्य आपः अनु अचारिषं) आज जल में प्रविष्ट हुआ हूँ (रसेन सं आस्महि) मैं इस जल के रस के स्वथ सम्मिलित हुआ हूँ, हे (अग्ने) आग्नि (पपस्वान आगहि) तू जल में स्थित हैं, मेरे पास आ (तं मा वचेसा संसृज) और उस मुझे तेज से युक्त कर।।9।।

(11)

6 **9 ताङ्िगर्घविर्घानः। अग्निः। त्रिष्टुप्।**

90 **श्रुधी नो अग्रे सदने सधस्थे**
युक्ष्वा रथममृतस्य द्रविल्नुम।
आनो वह रोदसी देवपुत्रे
भाकिर्देवानाभप भूरिहस्याः।।9।।

हे (अग्रे) अग्निः (सधस्ये सदने नः श्रुधी) सब देवताओं से युक्त ग्रहों में रहकर तू हमारे लोगों का श्रवण कर; (अमृतस्य द्रवित्नु रथं आयुक्ष्व) तू अमृत बरसाने वाले रथ को योजित कर। (देवपुत्रे रोदसी नः आ वह) देवों के माता–पिता द्यावापृथिवी को हमारे पास ले आओ; (देवात्तम आभिः अप भूः) देवों में से कोई हमारे यज्ञ में चले नहीं जावे इसलिए (रसस्थाः) तू यहीं रह; देवों के पास से नहीं जाना।।9।।

(12)

7 **यथोपरि**

96 **दुर्भन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विपुरुपाभवाति।**

यमस्य यो मन्वते सुमन्त्वग्रे तमृष्व पाह्मप्रयुच्छन्।।6।।

(यत अन्न अमृतस्य नाम सलक्ष्मा विष्णु रूपा दुर्भन्त भवाति) जो जल यहाँ पृथ्वी पर अमृत स्वरूप समान लक्षणों से युक्त और नाना रूप का गहन होता है। (यः यमस्य सुमन्तु मनवते) जो यम को अपराध को क्षमा करता है, हे (ऋष्व अग्रे) महान तेजस्वी अग्निः तू (अ प्रयुच्छन तं पाहि) क्षमाशील होकर उसकी रक्षा कर।।6।।

(13)

8 5 यथोपरि त्रिष्टुप्

102 पञ्च पदानि रूपो अन्वरोहं चतुष्पष्ठीमन्वेमिव्रतो न
अक्षरेण प्रति मिमएता-मृतस्य नामावधि संपुनामि।।3।।

(रूपः पञ्च पदानि अन्वरोहं) यज्ञ के पाँच (धाता, सोम, पशु, पुरोडाश और घृत) उपकरण स्थान हैं, उनको मैं यथाक्रम चढूं; (व्रतेन चतुष्पदीय अन्वेमि) यथा नियम चार त्रिष्टुवादि छन्दों का प्रयोग करता है। (एतां अक्षरेण प्रति मिने) ऊँकार का उच्चारण करके कार्य को सम्पन्न करता हूँ; (ऋतस्य नामो अधि सं पुनामि) यज्ञ को नामिरूप वेदी पर मैं सोम को पवित्र करता हूँ।

(14)

9 16 वैवस्वतो यमः। यमः। त्रिष्टुप्।

107 मातली कव्यैर्यमो आङ्गिरोमि-र्बृहस्पतिर्ऋकमिवावृधा।
'याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान स्वाहान्ये स्वद्ययान्ये
भदन्ति।।3।।

(मातली काव्यैः) इन्द्र काव्ययुग पितरों की सहायता से (समः आङ्गिरोमिः) यम अं गिरसादि पितरो की सहायता से और (बृहस्पतिः ऋव्यमि) वृहस्पति ऋववदादि पितरों की सहायता से

(वावृधानः) उत्कर्ष पाते हैं। (देवाः यान च वावृधुः) देव जिनको उन्नत करते हैं और (ये देवान्) जो देवों को बढ़ाते हैं, उनमें से (अन्ये) कोई (स्वाहा) स्वाहा के द्वारा और (अन्ये स्वधया) कोई स्वधा से (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं।।3।।

10 **य.प. लिङ्गोक्तदेवताः पितरो वा।**

112 **गं गच्छस्व पितृभिः स यमेनेष्टापूर्तेन परमेव्योमन्।**
हित्वायाषद्य पुनरस्तमेहि सं गच्छस्वतन्वा सुवर्चाः।।8।।

हे पिता! (परमे व्योमन पितृभिः स गच्छस्व) श्रेष्ठ स्वर्ग में अपने पितरों के साथ मित्रों, (यमेन इष्टा पूर्तेन सं) वैसे ही अपने यज्ञ दान आदि पुण्य कर्म के फल से भी मित्रों, (अवयं हित्वाय पुनः अस्तम एहि) पापा चरण को छोड़कर फिर गृह में प्रवेश करो, (सुवर्चाः तन्वा स गच्छस्व) और तेजस्वी शरीर को प्राप्त कर।।8।।

11 **य.प. अनुष्टुप।**

120 **त्रिकद्रुकेभिः पतति षकवीरेकमिद्वहत।**
त्रिष्टुगायत्री छन्दासि सर्वा ता याम आहित।।16।।

(त्रिकदुकेभिःषट उर्वीः एकं इत बृहत पतति) यमराज त्रिकन्दुक नामक यज्ञ में (ज्योति, गौर और आयु) संरक्षण के लिए प्राप्त होवे; यम छः स्थानों में (द्युलोक, भूलोक, जल औषधियाँ ऋक और सूनृत) रहता है; यह एक ही के संरक्षण के लिए प्राप्त होवे। (त्रिष्टुप गायत्री छन्दांसि ता सर्वा यमे आहिता) त्रिष्टुप गायत्री और अन्य सब छंद से सब यम में स्थापित हैं।।16।।

(16)

12 **14 दमनो यामायनः। अग्निः। अनुष्टुप्।**

146 **उशन्तस्त्वा नि धीम-ह्यशन्तः समिधीमहि।**
उशन्नुशत आ वह पितृन हविषे अतवे।।12।।

हे अग्निः (उशन्तः त्वा निधीमहि) फलों की इच्छा वाले हम तुझे यत्नपूर्वक स्थापित करते हैं और (उशन्तः समिधीमहि) तुझे प्रदीप्त करते हैं। (उशन उशतः पितृन) यज्ञाभिलाषी स्वच्छा से आने वाले देवों और पितरों के पास (हविषे अत्तवे आ वह) यक्ष्य के लिए हविर्द्रव्य ले आ।।12।।

13 य.प.

148 शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति।
मण्डक्या 3 सु संगण इम स्वविग्र हर्षय।।14।।

हे (शीति के) शान्त स्वभाववाणी! हे शीतिकावति, शीतवत् शान्तिदायक औषधियों से युक्त हे (हांदिक ह्लादिकावति) आहादक पृथ्वी। तुम आह्लाद देने वाली हो। तू (मण्डूक्या आ सु स गमः) बहुत मण्डलियों से युक्त हो—और (इमं अग्रि सु हर्षय) इस अग्नि को अत्यंत संतुष्ट कर।।14।।

(15)

14 14 शङ्खों यामायनः। पित्तरः। त्रिष्टुपः

134 ये अग्नि दग्धा ये अनगिदग्धा
मध्ये दिवः स्वधया यादयन्ते।
नेमिः स्वशकसुनीतिमता
यथावश तन्वं कल्पयस्व।।14।।

हे अग्नेः (ये अग्निदग्धाः ये अनग्रिदग्धाः) जो पितर अग्नि से जलाए गए हैं, और जो नहीं जलाये गए हैं, और (मध्ये दिवः स्वधया मादयत्ते) जो सब स्वर्ग में स्वधारूप अन्न से तृप्त होकर आनन्दित रहते हैं; (तेनिः स्वराट एताम असुनीति तन्वं) उनके साथ तू मिलकर हमारे पितरों के इस प्राणधार शरीर को (यथावश

कल्पयस्व) यथाशक्ति समर्थ बना।।14।।

(16)

15

136 **शतंयदा करलिजातवेदोऽथमेन परिदत्तात पितृभ्यः।**
यदा गच्छात्थसुनीतिमेतान्यथा देवानां वशनीर्भवाति।।2।।

हे (जातवेदः) सर्वत्र अग्निः (यदा एवं श्रृत ई करसि) जब तू इसको पूर्णतया जलाएगा (अथएव पितृभ्यः परि दत्तात्) तब इसको पितरों को प्रदान कर। (यदा एतां असुनीति गच्छाति) जब यह शरीर मृत होता है, (अथ देवानां वशनीः भवति) तब वह देवों के वश में रहता है।।2।।

18 य.प. (17)

153 **पूषेमा आशा अनुवेद सर्वाः सो अस्माँअभ्यतमेन नेषत।**
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन पुर एतुप्रजानन्।।5।।

(पूषा इमाः सर्वाः आशाः अनुवेद) पूषा इन सब दिशाओं को जानता है, (सः अस्मान अभयतमेन नेषत) वह हमें निर्भय मार्ग से ले जाया। (स्वास्तिदा आघूणिः सर्ववीरः प्रजानन अयुच्छन पुरः एत्) कल्याणप्रद तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानी पूषा सदा हमारे आगे रहे।।5।।

19 **14 संकुसको यामायनः। मृत्युः। त्रिष्टुप्।**

163 **परं मृत्योअनपरेहिपन्था यस्ते स्व इतरो देवयानात्।**
चक्षुष्यते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा
रीतिर्षामोवीरान्।।11।।

हे (मृत्यो) एत्युः (परं पन्थां अनु इति) तू सबसे भिन्न मार्ग से जा। (पराइहि) दूसरे मार्ग का अनुसरण कर। (देवयान्त इतरः यः

ते स्वः) तो मार्ग देवयान से अलग है उस मार्ग से ही तू जा हे (चक्षुष्यते) आँत्ववाने और (सृण्वते) सब कुछ सुनने वाले; (ते ब्रवीमि) तुझे नम्रतापूर्वक कहता हूँ (नः प्रजां मा रीरिषः उत वीरान आ) हमारे पुत्र–पौत्र आदि को तथा वीरों को भी नहीं मारना।।1।।

20 य.प.।

164 मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत् दाथीय आयुः प्रतर दधानाः।
आण्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवतयहियासः।।2।।

जो लोग (मृत्योः पदं यापयत्तः यत् ऐत) मृत्यु के कारण–मार्ग को छोड़कर जाते हैं, वे (द्राधीयः प्रतरं आयुः दधानाः) दीर्घ और उत्तम आयुष्य धारण करने वाले होते हैं। हे (यज्ञियासः) यज्ञशील यज्ञमानोः तुम (प्रजया धनेन आष्यायमानाः) प्रजा तथा धन से युक्त होकर (शुद्धाः पूतः भवत) शुद्ध और पवित्र बनकर रहो।।2।।

(21)

21 ऐन्द्रो विभदः प्राजापत्योवा, वासुकोवसुक्रद्वा। अग्निः। आस्तारपङ्क्ति।

199 अग्निर्जातो अथर्वणा विदाद्विश्वानि काव्या।
भुवद्दूतो विवस्वतो विवोमदे प्रियो यमस्यकाम्यो दिवअसे।।5।।

(अथर्वणा अग्निः जातः) अथर्वा ऋषि ने अग्नि को उत्पन्न किया था। (विश्वानि काव्या विदद) वह सब प्रकार से स्तुति स्तोत्रों को जानता है, वह (काम्यः विवस्वतः यमस्य इतः भुवत्) सबके इच्छनीय होकर देवों को बुलाने के लिए यजमान का दूत भी हो। वह (वः विभदे) तुम्हारे आनंद और सुखों के लिए हो। वह विवक्ष से सत्य ही गुणगान, महान और समर्थ है।।5।।

(17)

16 14 देवश्वा यामायनः। पूषा। त्रिष्टुप्।

151 पूषा त्वेतश्च्यावयतप्र विद्वा–ननष्टपशुभवनस्य गोपाः।

स त्वैतेभ्यः परिददत पितृभ्योऽगिर्देवभ्यः सुविदभियेभ्यः।।3।।

(विद्वान् भुवनस्य गोपाः अनुष्टपशुः पूषा) ज्ञानी सब जगत का रक्षक और पशुयुक्त पूषादेव (त्वा इतः प्र च्यावयतु) तुझे यहाँ से उत्तम लोक में ले जाय। (सः अग्निः) यह अग्नि (त्वा एतेभ्यः पितृभ्यः सुविदत्रि येभ्यः देवेभ्यः परि ददत्) तुझे धन–सुख आदि के दाता देवों और इन पितरों के पास ले जाय।।3।।

17 **य.प.**

152 **आयुर्विश्वायुः परियासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथपुरस्तात्।**
यत्रसते सुकृतो यत्र ते ययु–स्तत्र त्वादेवः सवितादधात।।4।।

(विश्वायुः वायु त्वा परि पासति) सर्वगामी वायु तेरी सर्वत्र रक्षा करे। (त्वा पूषा प्रपके पुरस्तात् पातु) उत्तम मार्ग में सबके अग्रभाग में रहने वाले पूषा तेरा रक्षा करे। (यम सुकृतः आसते) जहाँ पुण्यात्मा विराजते हैं और (यमते ययुः) जिस उत्तम वनेक में वे जाते हैं। (तत्र त्वा सविता देवः दधात) वहाँ सविता सूर्यदेव तुझे स्थापित करे।।4।।

(24)

22 **6 ऐन्द्रो विभदः, प्राजापत्योवावासुको वासुकृद्वा। इन्द्र। आस्तार पङ्क्ति।**

226 **त्वां यज्ञेमिरुक्यै–मसि रघ्रस्य चोदिता।**
इन्द्रं स्तोतृणामविता विवो मदे द्विषोनः पाह्यहसो विवक्षसे।।2।।

हे (सचीपते) शचीपति इन्द्रः हम (यज्ञेभिः उक्थैः हव्योभिः उप) यज्ञों–मंत्रों और होमीय वस्तुओं द्वारा (ईमहे) तुम्हारी आराधना करते हैं, तू (शचीत्तं श्रेष्ठं वार्यं नः धेहि) सब कर्मों का सर्वोत्तम अभिवर्षित फल हमें दें (वः वि मदे विवक्ष से) वह सचमुच महान् है।।2।।

(26)

23 9 य.प.। पूषा। अनुष्टुप्।

244 स वेद सुष्टुतीना-मिन्दुर्न पूषा वृषा।
अमिप्सुरः तुषायति व्रजं न आ अपायनि।।3।।

(इन्दुः न सः पूषा वृषा सुस्तुतीनां वेद) सोम के समान यह पूषा देव भी इच्छाओं को परिपूर्ण करने वाला है और वह उत्तम स्तोत्रों को जानता–सुनता है; (प्सुरः अभि अषायति) वह रूपवान पूषा कृपा जल वृष्टि करता है और वह (व्रजं नः आ प्रषायति) हमारे गोष्ठ में भी जल का सिंचन करता है।।3।।

(27)

24 24 ऐन्द्रो वसुक्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

257 अभूर्वौक्षीर्व्यु ? आयुरानड दर्षन्तु पूर्वो अपरो न दर्षत।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारेरजसोविवेष।।7।।

हे इन्द्रः (अभूः उ) तुमने प्रकट होकर दर्शन दिया (औक्षीः) और वृष्टि भी बरसायी; तू (आयुः अष्ट) दीर्घजीवी है। (पूर्वः नु दर्षत अपरः नु दर्षत) तू पहले शत्रू का विदारण किया था और पश्चात् भी किया था (यः अस्य रजसः पारे विवेय) जो इस लोक के पार भी व्याप रहा है, (द्वे पवस्ते त न परि भूतः) ये सर्वव्यापक द्यावा–पृथ्वी उसको नहीं भाप सकते।।7।।

25 य.प.।

265 सप्त वीरासो अधरादुदाय-भष्टोत्तरात्तात् समजग्मिस्ते।
नव पश्चातात् स्थिविमत्त आयन् दश प्राक सानुवितिरन्यश्नः।।15।।

(अश्रः अधरात सप्त वीरासः उत आयन) प्रजापति के नामि–शरीर से विश्वामित्र आदि सप्त ऋषि उत्पन्न हुए; और (अष्ट उत्तरात् तात स अजग्मिरन) उसके उत्तरी शरीर से बालखिल्य

आदि आठ उत्पन्न हुए। (पश्चातात् स्थिविमत्तः नव आयन) पीछे से भृगु आदि नौ उत्पन्न हुए; (प्राकदश) अङ्गिरा आदि दस आगे से उत्पन्न हुए; (अश्रः सानु वितिरत्ति) ये यज्ञाशका भक्षण करने वाले द्युलोक के उमत प्रदेश की अभिवृद्धि करते हैं।।15।।

26 य.प.

266 दशानामेकं कपिलंसमानं तं हिन्वात्तिक्रतवे पार्याय।
गर्भं माता सुधितं वक्षणा-स्ववेनत्त तुषयत्ती विभति।।6।।

(दशानां एकं समानं कपिलं) दस अंगि रसों में एक सबके प्रति समान भाव रखने वाला कपिल है; (तं पार्याय ऋतवे हिन्वत्ति) उसको श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कराने वाले आवश्यक यज्ञादि कर्म साधना के लिए प्रेरित करते हैं। (माता अवेनत्तं वक्षणासु सुधितं गर्भं तुषयत्ती बिभर्ति) जगत् निर्भात्री प्रकृतिमातान कामना न करने वाले उस गर्भ को संतुष्ट होकर जल में धारण किया।।16।।

27 य.प.।

273 देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन कृन्तत्रा दषामुपरा उदायन।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूक बहतः पुरीषम्।।23।।

(देवानां माने प्रथमाः अतिष्ठन) देवों के निर्माण काल में प्रथम मेघ उत्पन्न हुए; (एषां कृन्तत्रात् उपराः उदायन्) मेघ के छेदन–भेदन होने से जल की उत्पत्ति हुई। (त्रयः अनूपाः पृथिवी तपत्ति) तीन गुणों को उत्पन्न करने वाले–पर्जन्य, वायु और सूर्य–ये तीन अनुकूल होकर भूमि को तप्त करते हैं; और (द्वा बृबूक पुरीषं वहतः) इनमें से दो–वायु और सूर्य–प्रीतिकर जल का वहन करते हैं।।23।।

28 य.प.

274 साते जीवातुरुत तस्य विद्धि आस्मैतादृगपग्रहसमर्ये।

आविः स्वः बृणुते गृहते बुस स पादुरस्य निर्णिजोन्व मुच्यते।।24।।

(ते सा जीवातुः) सूर्य ही तुम्हारा जीवनाधार है; (उत तस्य विद्धि) और तू ही इस स्वरूप को जानता है; (समये एतादृग मा अपग्रहः स्म) यज्ञ के समय ऐसे प्राणदायक स्वरूप को मत द्विपा–उस प्रभाव का वर्णन–स्तवन कर। (स्वः आविः वृणुते) वह सूर्य त्रिलोक को प्रकाशित करता है। (बुसं ग्रहते) वह सूर्य जल को आप्य रूप से शोषण करता है; (अस्य निर्णिजः सः पादुः न मुच्यते) इस गमन तत्त्व का वह चेतनामय स्वरूप सूर्य कभी त्याग नहीं करता।।24।।

(31)

29 **11 कवष ऐलषः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्।**

313 **नित्यश्चाकन्यात स्वपतिदमूना यस्मा उ देवः सविता जजाना।**
भगो वा गोभिरयमेयनज्यात् सो अस्यै यारुश्छदयदुतस्यात।।41।।

(देवः सविता यस्मै आ जजान) जगत के निर्माता सविता देव ने जिसे उत्पन्न किया। (स्वपतिः दमूनाः नित्यः चाकन्यात्) धनों के स्वामी और दानशील प्रजापति उसे शुभ फल दे। (मगः वा अर्यमा ईयज्ञोभिः अनज्यात् मग और अर्यमा इसके प्रति स्तुतियों से प्रसन्न होकर स्नेहयुक्त हों; (उत अस्मै चारुः छदयत स्यात) और हमारे लिए अच्छी प्रकार सब अनुकूप करें।।24।।

30 **य.प.**

317 **नैतावदेना परो अन्यद-स्त्युसा स द्यावापृथिवी विभर्ति**
त्वच पवित्रं कृणुत स्वधावान यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति।।8।।

(एना परः एतावत अन्यत न अस्ति) द्यावा पृथिवी को देवों ने निर्माण किया, इतना ही उनका सामर्थ्य नहीं है। इससे भी

अधिक है। (उक्षा सः द्यावापृथिवी बिभर्ति) वह जगत को निर्माण करने वाला और द्यावा पृथिवी को धारण करने वाला है। वही (स्वाधावान) अन्नादि पोषक पदार्थों का स्वामी है; (यद हरितः सूर्यं ई न वहन्ति) जिस समय सूर्य ने घोड़े वहन नहीं करते थे, (पवित्रं त्वचं कृणुत) उसी समय बलवान हिरण्य गर्भ ने तेजस्वी शरीर ग्रहण किया।।8।।

(32)

31 9 कवष ऐलूषः। इन्द्रः। जगती

324 तदित् सधस्थममि चारु दीधय गावो यच्छासन वहतु न घनेवः।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्ण्याऽमि वाणस्यं सप्तधातरिज्जनः।।4।।

(यत् धेनवः वहतु न) जैसे गौएं गोशाला की इच्छा करती हैं, और जहाँ (गावः शासन) स्तुति–स्तोत्रों का पाठ हमारे यज्ञ में इन्द्र के आगमन की इच्छा करके हो रहा है, (तत् इत चारु सधस्थम अभि दीर्घम) वैसे ही या स्थान को हे इन्द्रः अपनी उज्जवल कान्ति से प्रकाशित कर; (यत् पूर्ण्या मन्तुः माता यथस्य जनः इत सप्तधातः वाणस्य अमि) स्तोत्रों की प्राचीन और पूजनीय माता गायत्री हैं, और यह मनुष्य तेरी स्तुति सात छंदों में करण है।।4।।

(36)

32 14 लुशो धानाकः। विश्वेदेवाः। जगती–12, 13.14 त्रिष्टुप

378 महो अग्रेः समिधानस्य शर्म-ण्यनागा मित्रे वरणे स्वस्तये।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीभनि तद देवानामवा अयावृणीमहे।।12।।

(समिधानस्य महः अग्रेः शमीणि स्याम) दैदीप्यमान महान अग्नि के सुख में हम रहें। (अनागा मित्रे वरुणे स्वस्यते) हम

अपराध रहित होकर रहे; और कल्याण की प्राप्ति के लिए निम्न और वरुण के अधीन रहें; (सवितुः श्रेष्ठे सवीमनि स्याम) सवितु देव के सर्वोत्कृष्ट शासन में हम रहें। (अद्य देवानां तत् अवः वृणीमहे) इसलिए आज देवों से उत्तम रक्षा की याचना करते हैं।।12।।

309 ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः।
ते सौमग वीरवदोमदनो दधात न द्रविण चित्रमस्ये।।13।।

(ये विश्वेदेवाः सत्यसवस्य सवितुः मित्रस्य वरुणस्य व्रते) जो देव सत्य के प्रभु सविता, मित्र और वरुण के व्रत के कर्मों में तत्पर हैं, (ते वीरवत गोमत सौमग अजः चित्रं द्रविणं अस्मे दधातन) वे वीर पुत्रों से युक्त, पशु युक्त, ऐश्वर्य, ज्ञान, पूजनीय धन और कर्म हमें प्रदान करें।।13।।

34 य.प.।

380 सविता पश्चातात सविता पुरस्तात्।
सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वताति।
सविता नो रासता दीर्घमायुः।।14।।

(सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात सविता उत्तरात्तात सविता अधरात्तप्त) सविता देव जो पश्चिम, पूर्व और दक्षिण में है, वह (सविता नः सर्वताति सुवतु) सविता देव हमें सब प्रकार का धन ऐश्वर्य प्रदान करें; (सविता नः दीर्घ आयुः रासताम्) वह सविता देव हमें दीर्घ आयु प्रदान करें।।14।।

(37)

35 12 सौर्योऽमितपाः। सूर्यः। जगती।

392 यद्वो देवाश्चकृम जिह्या गुरु
मनसो वा प्रयुती देवहेकेनम्।

अशवा यो नो अभि दुच्छुनायते
तस्मिन तदेनो वसवो निधेतन।।12।।

हे (वसवः देवाः) धन सम्पन्न देवोः (वः यत जिह्वया मनसः प्रयुती) तुम्हारे प्रति हमको वाणी द्वारा, मन के प्रयोग से अपराध करते हैं, (गुरु देवहलनं चकृम) महान् देवों के क्रोधजनक कर्म करते हैं, (यः अरावा नः अभि दुच्छुनायते) जो दुष्ट शत्रु हम पर सब प्रकार से कष्ट देना चाहता है (वस्मिन् तत् एनः नि धतेन) उसके कारण उस पर वह पाप न्यस्त करो।।12।।

(45)

36 **12 वत्सप्रिर्यालन्दनः। अग्निः। त्रिष्टुप्।**

462 **दिवरचरि प्रथमं जज्ञे अग्नि-रस्मद द्वितीयं परिजातवेदाः।**
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्म-मिन्धान एनं जरते स्वाधीः।।

(प्रथमं अग्निः दिवः परि जज्ञे) प्रथम अग्नि आकाश में सूर्य रूप में प्रकट हुआ; (द्वितीयं जातवेदाः अस्मत परि) अनन्तर अग्नि दूसरा जातवेदा–ज्ञानी नाम से हमारे बीच पाथिव रूप में प्रकट हुआ; (तृतीयं नृमणाः अप्सु) फिर लोकानुग्राहक अग्नि अन्तरिक्ष में जल में विद्युत रूप से प्रकट हुआ, इस प्रकार (एनं स्वाधीः अजस्यं इन्थानः जरते) मनुष्य हितैषी अग्नि को कभी बुझाया न होने देते हुए, निरन्तर प्रज्जवलित रखने वाले स्तोति स्तुति करते हैं।।1।।

37 **य.प.**

464 **समुद्रे त्वानृमणा अप्स्व 1न्त-नृचसा ईधदिवोअग्र ऊधन।**
तृतीये त्वा रजसितस्थिवास-मपामुपस्थे महिषा अवर्धन।।3।।

हे (अग्रे) अग्निः (समुद्रे अप्सवत्तः त्वा नृमण ईध) समुद्र में जल के भीतर स्थित तुझे नर–हितैषी वरुण ने प्रदीप्त किया है; (नृचक्षाः दिवः ऊधन) मनुष्यों में ज्ञान का द्रष्टा आदित्य तुझे

आकाश के मेघ से प्रापत कर यज्ञ में प्रदीप्त करता है; (तृतीये अपां उपस्थे रजसितास्थिवा से त्वा) और तीसरे वृष्टि उत्पादक जलों के भवलोक में–अन्तरिक्ष में विद्युत स्वरूप से स्थित तुझे (महिष्याः अवर्धन) महान मरुत आदि स्तोत्रा स्तुतियों से अधिक तेजयुक्त करते हैं।।3।।

(46)

38 10 वत्सप्तिर्मालन्दनः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

483 यं त्वा देवादधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम्।
स यामन्नग्रे स्तुवते वयो घाः, प्र देवयन् यशसः संहिपूर्वी।।10।।

हे अग्निदेवः (यः हव्यवाहं त्वा देवाः दधिरे) जिस हव्यवाह तुझको देवों ने धारण किया है, (भानुषासः पुरुस्पृहः यजत्रं) अनेक कामनाओं की इच्छा करने वाले मनुष्यों ने पूजाई तुझे स्वीकृत किया है; हे (अग्रे) अग्निः (सः यामन स्तुवते वयः धाः) वह तू यज्ञ में स्तुति करने वाले हमें अन्न दो; (देवयन पूर्वीः यशसः स) देवभक्त यजमान तेरी कृपा से बहुत यश–कीर्ति प्राप्त करता है।।10।।

(47)

39 8 सप्तगुसंकिगरसः। बैकुण्ठ इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

490 वनीवानो बम दूतास इन्द्र अस्मभ्यं चित्रवृषण रयिदाः।
हृदिस्पूर्शा मनसा वच्यमाना स्तोभाश्चरन्ति सुभतीरियानाः।।7।।

(वनी वानः मम दूतासः स्तोत्राः) प्रेम युक्त प्रार्थना से भरी मेरी दूतसदृश स्तुतियाँ (सुमतीः इयानाः इन्द्रं चरत्ति) सद्बुद्धि की इच्छा करके इन्द्र के पास पहुँचे; (हृदिस्पृशाः मनसा वच्यमानाः) ये हृदय स्पर्शी और अन्तःकरण पूर्वक तैयार की गई है; (अलभ्य चित्र कृष्णं रयिदाः) हमें सुखकारी और अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान कर।।7।।

(48)

40 11 वैकुण्ठ इन्द्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

502 आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामिधाम।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षु-रपराजितमस्तृत्मथाकेहम।।11।।

(आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवानां) आदित्य वसु, रुद्र, वा मरुत और देवों के (धाम देवः न मिनामि) स्थान देव इन्द्र नष्ट नहीं करता; (ते मा भद्राय शव से ततक्षुः) वे देव मुझको कल्याण और बल प्रदान करने का अनुग्रह करे; (अपराजितं अस्तृतं अषाकहम्) मैं अपराजित, उत्साहयुक्त और दृढ़ हूँ।।11।।

(51)

41 (9) 9 देवाः। 9 अग्निः। त्रिष्टुप्।

529 तव प्रयाजा अनयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः।
तवग्रि यज्ञो इयमस्तु सर्व-स्तुभ्य नमन्ता प्रदिशश्चतस्यः।।9।।

हे (अग्रे) अग्निः (तव प्रयाजाः अनुयाजाः केवले अर्जस्वनाः हविषः भागाः सन्तु) तेरे प्रयान अनुयाज और असाधारण बलशाली हवि के भाग हों; (अयं सर्वः यज्ञः तव अस्तु) यह सब यज्ञ तेरा ही हो; (प्रदिशः चतस्यः तुभ्यं नमन्ताम) चारों दिशाएँ तेरे आगे अवनत हों तेरा आदर करें।।9।।

(52)

42 6 सौचीकोङ्ग्रिः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्।

532 अयं यो होता किरुस यमस्य कमप्यूहे यतसमञ्जन्ति देवाः।
अहरहर्जायते मासिभास्य-या देवा दधिरे हव्यवाहम्।।3।।

(अयं यः होता किः उ सः) यह जो होता है वह कौन है? (यमस्य कं अपि ऊहे) वह मन का कुछ भाग वहन करता है, अथवा (यत् देवाः समञ्जन्ति) जो यजमान के द्रव्य का भाग देवों

को प्राप्त होता है; (अहः अहः मासि मासि जायते) सूर्य रूप से प्रतिदिन उज्जवला से और चन्द्रमा रूप से प्रतिमास प्रकट होता है; (अथ देवाः हव्यवाहं दधिरे) उस अग्नि को देवों ने हव्यवाहक रूप में धारण किया है।।3।।

(55)

43 8 वहदुक्यो वामदेव्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

555 आरोदसी अपृणादोतमध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त।
चतुस्त्रिशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेल ज्योतिषा विर्व्रतेन।।3।।

वह इन्द्र अपने शरीर वा तेज से (रोदसी उत मध्यं आ अपृणात) द्यावा—पृथिवी और आन्तरिक को पूर्ण करता है; (पंचदेवों सप्तसप्त ऋतुशः) उसी प्रकार पंचदेव, (देव, मनुष्य, पितर, असुर और राक्षस) और सात तत्वों (सात मरुदगण, सात सूर्य किरण, सात लोक आदि) को समय—समय पर प्रकाशित—पूर्ण करता है; वह (विव्रतेन चतुस्त्रिशता सरूपेण ज्योतिषा) विविध कर्मकर्ता 34 प्रकार के देवों—(आइ वस्तु, बार आदित्य, 11 इन्द्र प्रजापतिह फटकार (और विराट) से, एक स्थान देव से (पुरुधार्विचष्टे) अनेक प्रकार का दीखता है।।3।।

(56)

44 7 वृहदुक्यो वामदेव्यः। विश्वेदेवाः। जगती।

564 महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदघुरपि कतुम।
समविव्यचतुरुत यान्यात्विषु-रेषां तनूषु निर्विविशुः पुनः।।4।।

(पितरः एषां महिम्रः ईशिरे) हमारे पितर भी देवों के समान महिमा के अधिकारी हुए हैं; (देवाः अपि देवेषु क्रतुं अदधुः) उन्होंने देवत्व प्राप्त करके देवों के साथ कर्म सामर्थ्य को धारण किया है;

(उत यानि अत्विषुः समविव्यचुः) और जो ज्योतिर्मय लोग दीप्ति पाते हैं, वे उनके साथ मिल गए हैं; (एषां तनूषु पुनः निविविशुः) उनमें वे शरीरों में पुनः प्रवेश करते हैं।।4।।

(57)

45 6 बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्तबन्धुर्गौपायनाः। विश्वेदेवाः। गायत्री

571 आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक च सूर्यं दृशे।।4।।

हे सुबन्धुः (ते मनः पुनः ऋत्वे दक्षाय जीवसे) तेरा मन पुनः कर्म करने, बल प्राप्त करने, जीवन के लिए, (ज्योक सूर्यं च दृशे) और चिरकाल तक सूर्य के दर्शन के लिए (आ एतु) मेरे पास आवे।।4।।

(59)

46 10 बन्धु य.पं.। निर्ऋतिः सोमश्च त्रिष्टुप्।

589 मो षुणः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येमन्दु सूर्यमुच्वश्त्तम।
द्युमिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सुर्नि ऋतिर्जिहीताम्।।4।।

हे (सोम) सोमः (न मृत्यवे आ सु परा दाः) तू हमें मृत्यु के हाथ में–अधीन –न कर; (सूर्य उत चरत्तं नु पश्येम) हम सूर्य को ऊपर आकाश में जाते सदा देखें; – निरंतर हम जीवित रहे (द्युमिः हितः जरिमा नः सु अस्तु) दिन–2 हमारी वृद्धावस्था सुखदायक हितकारी हो और (निर्ऋतिः परातर सु जिहीताम्) निर्ऋति देवता दूर हो।।4।।

47 य.प.। 7 पृथिवी–द्वयत्तरिक्ष–सोम–पूष–पव्या–स्वस्तयः। त्रिष्टुप्।

592 पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौदेवी पुनस्तरिक्षरम्।
पुनर्नःसोमस्त्रन्व ददातु पुनः पूषा पथ्यां 3या स्वस्तिः।।7।।

(पृथिवी नः पुनः असुं ददातु) पृथिवी देवी हमें पुनः जीवन–प्राणवान करें; (पुनः द्यौः पुनः अन्तरिक्षम) पुनः द्युलोक और अन्तरिक्ष देवता हमें प्राण दे; (सोमः नः पुनः तन्वं ददातु) सोम हमें पुनः शरीर दें और (पूषा पथ्यां पुनः) सर्व पोषक पूषा हमें हितकर वाणी प्रदान करें; (या स्वस्तिः) जो स्वस्ति वचन है वो भी हमें दें जिससे हमारा कल्याण हो।।7।।

(60)

48 12 य.प.। जीवः। अनुष्टुप

602 अयं आतायं पिताऽयं जीवातुरागमत।
इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहिनिरिहि।।7।।

(अयं माता) वह माता (अयं पिता) यह पिता और (अयं जीवातु आगमत) यह प्राण दाता आ गया है (सुबन्धो! इदं तव प्रसर्पणं) हे जीव, यह शरीर तुम्हारे समर्पण का स्थान है (एहि, निरिहि) यहाँ आ ।।7।। सुबन्धा। इदं तव प्रसर्पणम्–हे जीवः यह शरीर तेरा आश्रय स्थान है।।7।।

49 य.प.

606 न्य ? ग्वातोऽव वाति न्यक् तपति सूर्यः।
नीचीनमहन्या दुहेन्यंग्भवतुते रपः।।11।।

(वातः न्यक् अव वाति) वायु नीचे की ओर बहता है (न्यक् सूर्यः तपति) सूर्य ऊपर से नीचे की ओर तपता है (अहन्या नीचीनं दुहे) न मारने योग्य गौ नीचे की ओर दुही जाती है, उसी प्रकार (तु रपः) तेरा पाप या अकल्याण (न्यक् भवतु) नीचे की ओर होवे।।11।।

रपः–दोष, पाप, हानि, अकल्याण, ते रपः न्यकभवतु–तेरा पाप या अकल्याण नीचे की ओर होवे।।11।।

50 य.प.। 12 हस्तः

607 **अयं ये हस्तो भगवा-नयं मे भगवत्तरः।**
अयं मे विश्वर्भषजोऽयं शिवामिमर्शनः।।12।।

(अयं ये हस्तः भगवान) यह मेरा हाथ भाग्यवान है, (अयं ये भगवत्तरः) यह मेरा हाथ अधिक भाग्यशाली है। (अयं ये विश्व भेषजः) यह मेरा हाथ रोगों का निवारक है (अयं शिव–अभि अशनिः) यह मेरा हाथ शुभ मंगल बढ़ाने वाला है।।12।।

यह मेरा हाथ सामर्थ्यसापी है और मेरा दूसरा हाथ तो अधिक ही प्रभावशाली है। मेरे इस एक हाथ में सब रोग दूर करने वाली शक्तियाँ है, और इस दूसरे हाथ में मंगल करने का धर्म है।।12।।

(61)

51 27 नामानेविष्ठो मानवः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्।

621 **अग्रि र्हं नामोत जातवेदाः अधीनो होतर्ऋतस्य होताध्रुक।।**
भागौ ह नामोत यस्य देवाः स्वरर्णयेमिथषधस्येनिषेदुः।।14।।

(उत अर्गेः ह नाम) वह अर्ग नामवाला तेज कल्याणकारक प्रसिद्ध है; (यस्य त्रिषधस्थे ये देवाः स्वर्ण निषेदुः) जिस अग्नि के तीनों लोकों में विद्यमान तेज में जो सब देव स्वर्ग के समान रहते हैं।

(उत अग्निः ह नाम) और यह तेज अग्नि ही स्वयं है; (जात वेदाः) उसका नाम जात वेदस भी है; हे (होतः) होम निष्पादक अग्निः (ऋतस्य होता अध्रुक नः श्रुधि) यज्ञ के होता तू द्रोहबुद्धि न करके हमारे आह्वान को प्रेम से सुने।।14।।

52 य.प.।

626 इयं मे नामिरिहमे सधस्थ–मिमेमे देवाअयमस्मिसर्वः।
द्विजा अहं प्रथमजा ऋतएये–दं धेनुरदुहज्जायमाना।।19।।

(इयं मे नामिः) यह वाणी (आदित्य) मेरा बंधक हैं; (इह मे सधस्यम) इस मंडप में मेरा रहने का स्थान है; (इसे देवाः मे) ये सारे देव–प्रकाशमान किरणें मेरे अपने हैं; (अयं सर्वः अस्मि) यह मैं ही सब हूँ; (यह द्विजाः ऋतस्य प्रथमजाः) और ये ब्राह्मण सत्य स्वरूप ब्रह्मा के पूर्व ही उत्पन्न हुए हैं; (धेनुः जायमाना इदं अदुहत) पृथिवी देवता–आध्यमिका वाक् ने उत्पन्न होकर यह सब उत्पन्न किया।।19।।

53 य.प.।

634 त ऊ णो महोयजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः।
ये वाजाँ अनयता वियत्तो ये स्था निचेतारो अभूराः।।27।।

हे (यजत्राः देवासः) यज्ञीय देवोः (ते उ महः ऊतये सजोषाः भूत) तुम हमारी उत्तम रक्षा के लिए सब एकम मिवा; (ये वाजन अनयतं वियत्तः) तुम हमें अन्न दो, तुम मोहरति हो, (ये अभूराः निचेतारः स्थ) तुम ज्ञानी हो। और तुम शोधक का निर्णय करने वाले होवो।।27।।

(62)

54 य ऋतेन सूर्यभारोहयन दिव्य-प्रथमन पृथिवी मातरं वि।
637 सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृण्णीत मान वसुमेधसः।।3।।
54 11 नामानोदेष्ठो मानवः। विश्वेदेवोः 1-6 अङ्गिरसोवा जगती।

हे (अङ्गिरसः) अंगिरसोः (ये ऋतेन विवि सूर्य आरोहयन) तुमने सत्यरूप यज्ञ के बल से द्युलोक में सर्वप्रेरक सूर्य को स्थापित किया है; (माता पृथिवी वि अप्रथयन) और सबकी निर्मात्री

पृथिवी को यज्ञकर्मों से समृद्ध तथा प्रसिद्ध किया है; (वः सुप्रजास्त्व अस्तु) तुम्हारी उत्तम सन्तति हो; हे (सुमेधसः) उत्तम शुद्धियुक्त ऋषियोः (मानव प्रति गृम्णीत मुझ मानव को अपनी शरण में लेओ।।3।।

55 य.प. अनुष्टुप।

639 विरूपास इहर्षयन्स्त इन्दम्मीरवेपसः।
ते अङि्गरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे।।5।।

(ऋषयः विरूपासः इत) कर्मों के दृष्टा ऋषि विविध रंग और रूप वाले होते हैं; (ते इत गम्भीर वे पसः) वे अंगिरस ऋषि विचारपूर्वक कर्म करने वाले होते हैं; (ते अङि्गरसः अग्नेः सूनवः) ये अङि्गरस ऋषि अग्नि के पुत्र हैं; (ते परि जज्ञिरे) ये चारों ओर प्रादर्भूत हुए हैं।।5।।

56 य.प. बृहती।

640 ये अग्नेः परिजज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि।
नवग्वो नु दशग्वो अङिगरस्तमः सचा देवेषुमहते।।6।।

(विरूपासः ये दिवः परि अग्रे परि जज्ञिते) विविध रूपवाले जो अंगिरस ऋषि द्युलोक में अग्नि से चारों ओर प्रादुर्भूत हुए; (नवग्वः दशरवः तु अङि्गरस्तमः) उन अगिरसों में श्रेष्ठ किसी ने नौ मास तक और किसी ने दस मास तक यज्ञ कर्म पूरा किया और पश्चात् उठ गए, (देवेषु सचा महते) उनके सदृश तेजस्वी देवों के साथ अवस्थित वह अग्नि मुझे धन देता है।।6।।

(63)

57 27 गयः प्लातः। विश्वेदेवाः। जगती।

653 यईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतगश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादनसस्पर्य-द्या देवासः पिपृता स्वस्तये।।8।।

(प्रचेतसः यत्तवः ये स्थातुः जगतः) उत्कृष्ट ज्ञानवान और मननशील देव स्थावर और जंगम (विश्वस्य भुवनस्य ईशिरे) सब भुवनों के स्वामी हैं; हे (देवासः) देवोः (ते नः कृतात अकृतात एनसः) तुम हमें किए और न किए हुए मानसिक पाप से (अन्य स्वस्तये परि पितृत) कल्याणमय सुख के लिए आज सब ओर से बचाकर परिपालन करो।।8।।

58 य.प.।

655 सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहससुशर्माणमदिति सुप्रवीतिम।
दैवी नावं स्वरित्रमनागस-मस्तवतीमा संहेमा स्वस्तये।।10।।

(सुत्रामाणं पृथिवी अनेहसं) सबों की रक्षा करने वाली, अत्यंत विशाल, निष्पाप, (सुशर्माण अदिति सुप्रवीति) सुख युक्त, ऐश्वर्यवती उत्तम आचरणवाली (दैवी सु–अरित्रां अनागस) दैवी–गुणसम्पन्न, सुंदर देनेवाली पापरहित (अस्मवती नावं द्यां स्त स्तये आ रुहेम) निश्छिद्र नौका के समान स्थित द्यु–स्वर्ग लोक पर, हमारे कल्याण के लिए हम आरोहण करें।।10।।

59 य.प.।

656 विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये त्रायहवंनो दुखायाअभिहुतः।
सत्यमां वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये।।11।।

हे (यजवाः विश्वे) यजनीय देवाः (ऊतये अधिवोचत) तुम रक्षा के लिए हमें वचन दो, (अभिहुताः दुरेवायाः नः त्रायहवम) चारों ओर से नाश करने वाली दुर्गति से हमें बचाओ। हे (देवाः) देवाः (शृष्वतः वः सत्यया देवहत्या) श्रवण करते हुए तुम्हें सत्यरूप आदर युक्त स्तुतियों से (अवस स्वस्तये हुवेम) हम हमारी रक्षा के और कल्याण के लिए बुलाते हैं।।11।।

60 य.प.।

658 **यमादित्यरूसो नयथा सुनीतिमि–रतिविश्वानिदुरिताहासाये।**
यं देवासोऽवथवाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।।13।।

हे (अनुदिव्यासः) आदित्य देवोः (यं सुनीतिभिः विश्वानि दुरिता स्वस्तये अतिनयथ) तुम जिसे उत्तम मार्ग दिखाकर और सब पापों से –शत्रुओं से दुर्मार्गों से कल्याण के लिए पार ले जाते हो, (सः मर्तः विश्वः अरिष्टः एधते) वह मनुष्य सब प्रकार से अहिंसित होकर उत्कर्ष को प्राप्त होता है और स्धर्मणः परि प्रजामिः प्रजायते) सन्मार्ग से धर्माचरण से संतति और पशु आदि से युक्त श्रेष्ठ होता है।।13।।

(64)

61 17 गयः प्लातः। विश्वेदवाः। जगतीः

664 **कतूयत्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनात्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः।**
न मर्डिता विद्यते अन्य एम्यो देवेषु में अधिकामाअयसत।।2।।

(हृत्सु धीतयः क्रतवः ऋतूयत्ति) हृदयों में निहित बुद्धि–प्रज्ञा अग्निहोत्र आदि कर्म करने की इच्छा करती है; (वेताः वेनानी) तेजस्वी भोग देवों की इच्छा करते हैं; (दिशः आ पतयत्ति। हमारी अभिलाषाएँ देवों के पास आती है; (एभ्यः अन्यः मर्डिता न विद्यते) उन देवों के सिवाय और दूसरा कोई अस्वदाता नहीं है, (देवेषु अधि में कामाः अयंसत) इन्द्रादि देवों में ही मेरी इच्छाएँ नियम हो जाती है।।21।।

62 य.प.।

669 **प्र वो वायु रथयुज पुरधिस्रोमैः कृणुध्वं सुख्पाय पूषवम्।**
ते हि देवस्यं सवितुः सखीमनि क्रतुं सचन्तेसचितः सचेतसः।।7।।

हे स्त्रोताओं; (वः वायुं रथभुजं) तुम वायु, रथ योजक

(पुरंधि पूषणं स्त्रोमैः) और बहु कर्मकर्ता इन्द्र और पूषा को उत्तम स्तुति करके (सख्याय प्र कुषुध्वं) अपनी मैत्री के लिए बुवाओ–जिससे वे हमें धनादि दान से मित्र होंगे। (हि सचितः ते सचेतसः सवितुः देवस्य) कारण कि ज्ञान युक्त ये एकचित्त होकर सर्व प्रेरक सवितु देव के (सचीमनि कतुं सचन्ते) यज्ञ में प्रातःकाल में उपस्थित होते हैं।।7।।

63 य.प.।

670 **त्रिः सप्त सस्त्रा नधो महीरपो वनस्पतीन पर्वताअग्रिभूतये।**
कृशानुमतृन तिष्यं सधस्थआ रुद्रं रुद्रेषु रूद्रियहवामहे।।8।।

त्रिः सप्त सस्त्राः नद्यः) सरस्वती, सरयू, सिन्धु आदि बहने वाली नदियाँ (महीः अपः वनस्यत्रीन पर्वतान) महान उदक, वनस्पतियों, पर्वतों (अग्नि कृशानु अस्तृन) अग्नि, कृशानु नामक सोम पासक गन्धर्व, बाण चावक अन्द्रचर गंधर्वों, (तिग्य रुदियं रुद्रं सधस्थे) पुष्य नक्षत्र, हविर्माग योग्य रुद्र इन सबको यज्ञ में (रुद्रेष्टु हवामहे) उन रुद्रवाणों में श्रेष्ठ रुद्रों को स्तुति –वानि करने के लिए हम बुलाते हैं।।8।।

(65)

64 **15 वसुकर्णो वासुकः। विश्वेदेवाः। जगती**

690 **ब्रह्म गामश्वं जनयत्त ओषधी–र्वनस्पतीन पृथिवी पर्वंताँ अपः।**
सूर्यं दिवि रोहयत्तः सुदानव आर्या व्रहाविसृजन्तोअधिक्षमिः।।11।।

(ब्रह्म गां अश्वं ओषधीः वनस्पतीन पृथिवीं पर्वतान अपः) अश्व, गौ, अश्व, औषधि, वनस्पति, पृथ्वी–विस्तीर्ण भूमि पर्वत और उदकों के (जनयतः) उत्पन्न करने वाले और (दिवि सूर्य रोहयत्त) आकाश में सूर्य को स्थापित करने वाले (रुदानवः) उत्तम दान करने वाले में देव (अधिक्षामि) पृथ्वी पर सर्वत्र वास करते हैं;

(आर्या व्रता विसृजत्तः) उन्होंने श्रेष्ठ कल्याणकारी यायादि कर्मों का प्रचार कार्य किया है; उन्हें हम धन की याचना करते हैं।।11।।

65 य.प.।

692 पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवोधर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः। विश्वे देवासः शृणवन् वचासि मे सरस्वती सह धीमिः पुरम्या।।13।।

(पावीरवी तन्वतुः) आयुधवाली, मधुरा वाणी और (दिवः धर्ता अजः एकपात) द्युलोक धारक अज एकपात (सिन्धुः समुद्रियः आपः) सिन्धु, समुद्र आकाशीय जल विश्वे देवासः धीमिः पुरध्या सरस्वती) सर्व देव, कर्म और नाना प्रकार की बुद्धि से युक्त सरस्वती में वचांसि श्रृणवन) मेरे वचनों–स्तुतियों को सुनें।।13।।

66 य.प. 15 त्रिष्टुप।

694 देवान वसिष्ठो अमृतान ववन्दे ये विश्वा भुवनामि प्रतस्थुः। ते नौ रासन्तामुसगायमध सूयं पात स्वास्तिभिः सदानः।।15।।

(वसिष्ठः अमृतान देवान ववन्दे) वसिष्ठ कुलोत्पन्न अमर देवों की स्तुति की। (ये विश्वा भुवना अधि प्रतस्धुः) जो देव सारे भुवनों में लोकों में अपने तेज से श्रेष्ठ हैं; (ते अद्य नः उरुगाय रासनाय) वे आज हमें उत्तम यशस्वी अन्न दें; (यूयं स्वस्तिभिः नः सदापात) हे देवोः तुम हमारा कल्याण करके हमारी सदैव रक्षा करो।।15।।

(66)

67 15 वसुकर्णो वासुत्रः। विश्वेदवाः। जगती

697 इन्द्रो वसुभिः परिपातु नो गय–मादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु। रुद्रो रुद्रोमिर्देवो मृलयाति न–स्त्वष्टां नो ग्रामिः सुविताय जिन्वतु।।3।।

(वसुभिः इन्द्रः नः गयं परि पातु) वसुआं के साथ इन्द्र हमारे

अहकी सब ओर से रक्षा करें। (आदित्यैः अदितिः नः शर्म यच्छतु) आदित्यों के साथ अदिति देव माता हमें सुख दें। (रुद्रेभिः रुद्रः देवः नः मृकयाति) रुद्रपुत्र मरुतों के साथ रुद्र देव हमें सुखी करें। (त्वष्टा ग्रामिः सुविताय नः जिन्वतु) त्वष्टा देवपत्नियों के साथ हमें प्रसन्न करें।।3।।

68 य.प.।

700 वृष्त यज्ञो वृर्षणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवावृषणो हविष्कृतः।
वृष्पणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषां पर्जन्योवृषणो वृषस्तुमः।।

(यज्ञः वृषा) यह हमारा यज्ञ हमारी सब इच्छाएँ पूर्ण करे) और (यज्ञियाः देवाः वृषणः सन्तु) यज्ञाएं देव सुखों को देने वाले हों। (देवाः वृषणः हविष्कृतः वृष्पणः) स्तुति स्तोत्र बोलने वाले ऋत्विज और हबि समर्पण करने वाले अध्वर्यु हमें धन देवें। (ऋतावरी द्यावापृथिवी वृष्पणा) यज्ञाधिष्ठात्री द्यावापृथिवी हमें जल दें तथा सब ऋत्विज–स्तोता हमारी इच्छा पूर्ण करें।।6।।

69 य.प.।

704 धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः।
आप् ओषधीः प्र तिरक्तु नो गिरो भगोरातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम्।।10।।

(दिवः धतरिः ऋभवः सुहस्ताः) द्युलोक के धारणकर्ता, सत्य और तेज से प्रसिद्ध तथा सुंदर आयुधों से सम्पन्न ऋभु, (महिषस्य तन्यतोः वातापर्जन्या) बड़े शब्द करने वाले वायु और पर्यन्त (आपः ओषधीः नः गिरः प्रतिस्तु) अप, देवता और औषधि–वनस्पति हमारी स्तुतियों को वृद्धिगत करें। (रतिः भगवाजिनः मे हवं यन्तु) धनदाता भग और अग्नि–वायु–सूर्य मेरे आह्वान को सुनकर यज्ञ में पधारें।।10।।

80 य.पं.

707 **दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहितं ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया।**
क्षेयस्य पति प्रति वेशमीमहे विश्वान देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः।।13।।

(प्रथमा पुरोहित दैव्या होतारा अन्वेमि) प्रमुख अग, भाग में स्थापित, जो देवों को बुलाने वाले हैं। उन अग्नि और आदित्य की मैं हवि से सेवा करता हूँ। (ऋतस्य साधुया पन्था) यज्ञ के उत्तम कल्याणप्रद मार्ग का ये अनुगमन करता हूँ। (प्रमिवेश क्षेत्रस्य पतिं अमृतान अप्तयुच्छतः विश्वान देवान ईमहे) अनन्तर हमारे पास रहने वाले क्षेत्रपति और अमर अप्रमादी सर्व देवों से धन की याचना करते हैं।।13।।

71 य.प.। त्रिष्टुप।

709 **देवान वसिष्ठो अमृतान ववन्दे ये विश्वा भुवनामि प्रतस्थुः।**
ते नो रासन्तामुरुगायमथ यूयं पात स्वास्तिभिः सदानः।।15।।

(वसिष्ठः अमृतान देवान ववन्दे) वसिष्ठ कुलोत्पन्न ऋषि के अमर देवों की स्तुति की। (ये विश्वा भुवना अभि प्रतस्थुः) जो देव सारे भुवनों लोकों में अपने तेज से श्रेष्ठ हैं; (ते अद्य नः उरु गायं रासन्ताम। वे आज हमें उत्तम यशस्वी अन्न दे; (यूयं स्वास्तिभः नः सदा पात) हे देवों! तुम हमारा कल्याण करके हमारी रक्षा करो।।15।।

(67)

72 **12 अमास्य आङ्गिरसः वृहस्पतिः। त्रिष्टुप्।**

710 **इमांधियं सप्तशीर्ष्णी पिता न ऋतप्तजाता बृहती भविन्दतः**
तुरीय स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शसन्।।1।।

(धियं सप्तशीर्ष्णी ऋतप्रजातां बृहती इमां) कर्म के धारण कर्ता, सात प्रमुख देवों से–सात छन्दों से ऋषि को प्राप्त हुआ। (तुरीयं स्ति जनयत) तुरीय परमपद को भी उत्पन्न किया–पौत्र

की प्राप्ति हुई। (विश्वजन्यः इन्द्राय अयास्यः उक्थं शसन) सब जगत के हितकारी परमेश्वर–बृहस्पति को अयास्य नामक उनके पौत्र ने स्तोत्र से स्तवित किया।।1।।

73 य.प.।

712 ऋतं शसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुमासो असुरस्यवीराः।
विप्रं पदभङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त।।2।।

(ऋतु शसत्तः ऋजु दीध्यानाः) परम सत्य युक्त स्तोत्रों का गान करने वाले सरण भाव से ध्यान करने वाले (दिवः अस्ठरस्य पुत्रासः वीराः) तेजस्वी बलवान अग्नि के पुत्रों के समान रक्षक, वीर (अङ्गिरसः विप्र यज्ञस्य धाम पदं दधानाः प्रथम मनन्त) अंगिरस ज्ञानी, यज्ञ के धारण कर्ता प्रजापति के सर्वश्रेष्ठ, तेजस्वी, पदुको–रूप को ग्रहण करके पहिले से ही देवों के स्तोत्रों का मनन–चिन्तन करते हैं।।2।।

(69)

74 12 सुमित्रो वाध्यश्वः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

740 दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्यस्तरीः शतनीधऋम्बा।
द्युभान द्युमत्सु नृमि मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयोदवयत्सु।।7।।

(दीर्घ तन्तुः बृहत–उसा, सहस्मस्तरीः) अत्यंत स्तुतिमान, प्रज्वलित अनेक प्रकार के हवनों से उपासित (शतनीयः ऋम्बा द्युमत्सु द्युमान) अनेक रीतियों से स्थापित महान, तेजस्वियों में तेजस्वी, (अयं अग्निः नृमिः मृज्यमानः) यह अग्नि ऋत्विगों से अलङ्कृत होता है, (देवयत्सु सुमित्रेषु दीदयः) वह तू देवभक्त सुमित्रों के घरों में प्रदीप्त होओ।।7।।

(70)

75 11 सुमित्राो बाघ्रयश्वः। आप्तीसूक्तं। त्रिष्टुप्।

753 **तिस्त्रो देवीबर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम्।**
मनुष्वयज्ञं सुधिता हवीषी-वां देवी घृतपदी जुषन्त।।8।।

हे (तिस्यः देवीः) इकादि तीन–इका, सरस्वती भारती–देवियों (इदं वरीयः बर्हिः आ सीदत) इस उत्तम आसन पर बैठो। (वः स्योनं चक्रम) तुम्हारे लिए हमने यह सुखकारी आसन किया है। (इष्ठा देवी घृतपदी) इला, तेजस्विनी, सरस्वती और दीप्तिमती मातीने (मनुष्यवत् यज्ञं सुधित। हवीषि जुष्यन्त) जैसे मनु के यज्ञ में हवि का सेवन किया था, वैसे ही हमारे इस यज्ञ में उत्कृष्ट रीति से आदर पूर्वक रखे हवियों को सेवन करें।।8।।

(71)

76 **11 बृहस्पतिराङ्गिरसः। ज्ञानम्। त्रिष्टुप।**

757 **बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत प्रैरत नामधेयं दधान्तः।**
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रभासीत प्रेणा तदेषां निहित गुहाविः।।1।।

हे (बृहस्पते) बृहस्पतिः (प्रथमं नामधेयं दधानाः यत प्र ऐरत) प्रथम ही आरंभ में बाधक पदार्थों का नाम राकर जो कुछ बोलते हैं। वह (वाच अगम) उनको वाणी का सबसे पूर्व स्वरूप हैं। (एषां यत् श्रेष्ठं यत, अरिप्र आसीत) इनका जो श्रेष्ठ–शुद्ध और जो निष्पाप ज्ञान है, (एषां तत, गुहा निहितं प्रेणा आविः) उनका वह गुप्त है, और वह प्रेम के कारण प्रकट होता है।।1।।

77 **य.प.।**

758 **सक्तमिष तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसावाचमण्डत।**
अभा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताफि वाचि।।2।।

(तितउना सक्तुं इन पुनत्तः) जैसे रूप से स्वच्द कर लेते हैं, वैसे ही (धीराः यज्ञ मनसा वाचम अक्रत) बुद्धिमान श्रेष्ठ पुरुष जिस समय बुद्धि बल से वाणी के प्रस्तुत करते हैं। (अन्न सखायः

सख्यानि जानते) उस समय वे प्रेम भाव से युक्त ज्ञानी लोग मित्रता के भावों को जानते हैं, (एषां अधि वाचि मद्धा लक्ष्मीः निहिता) उनकी वाणी में कल्याणकारक मंगलमयी लक्ष्मी निवास करती हैं।।2।।

78 य.प.।

767 ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्र त्वो गायतिशक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्व भाभावि मिमीतउत्वः।।11।।

(त्वः ऋचां पोषं पुपुष्वान आस्ते) एक स्तोत्रा–विद्वान–वेद मंत्रों का यज्ञानुष्ठान में विधिवत प्रयोग करके अधिष्ठित होता है। (त्वः शक्करीषु गायत्र्यं गायति) और दूसरा शक्कवरी ऋचाओं में गायत्री छंद में साम का गान करता है। (त्वः ब्रह्मा जात विद्यां वदाति) कोई एक वेदवित विद्वान प्रत्येक इष्ट कार्य में प्रायश्चित आदि विद्या का उपदेश करता है। (उ त्वः यज्ञस्व मामां विमिभीते) कोई पुरोहित यज्ञ कर्म के विभिन्न कार्यों का विशेष प्रकार से अनुष्ठान करता है।।11।।

(72)

79 9 लौक्यो वृहस्पतिः बृहस्पतिगङ्गिरसो वा।
दाक्षायणी अदितिर्वा। देवः। अनुष्टुप।

769 ब्रह्मणः पतिः एता कर्मरिः इव सं अधमत।
देवानां पूर्ण्ये युगेऽसतः सदजायत।।2।।

बृहस्पति या अदिति ने लुहार के समान इन देवों को उत्पन्न किया। (देवानां पूर्ण्ये युगे असतः सत अजायत) देवों के पूर्व युग में आदि सृष्टि में अंसत् से सत् उत्पन्न हुआ (अव्यक्त ब्रह्म से व्यक्त देवादि उत्पन्न हुए।।2।।

80 य.प.

770 **देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत।**
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तान पदस्परि।।3।।

(देवानां प्रथमे युगे असतः सत् अजायत) देवों के पूर्व युग में असत् से सत् उत्पन्न हुआ। (तत् अनु आशाः अजायत्त) इसके अनन्तर दिशाएँ उत्पन्न हुई और (तत् परि उत्तानपदः) उसके पश्चात् वृक्ष उत्पन्न हुए।।3।।

81 **य.प.।**

775 **अष्टौ पुत्रसो अदिते-र्ये जातास्तन्व स्परि।**
देवाँ उपप्रत सप्तभिः परा भार्ताण्डमास्यत।।8।।

(ये अदितेः तन्वः परि अष्टौ पुवासः जाताः) जो अदिति के शरीर से आठ पुत्र–मित्र, वरुण, धाता, अर्यना, अंश भग विवस्वान और अदित्य उत्पन्न हुए; (सप्तभिः देवान उप प्रैत) सात पुत्रों के साथ वह देवों के पास गई और (मार्ताण्ड परा आस्यत) आठवा पुत्र सूर्य को आकाश में छोड़ दिया।। 8।।

82 **य.प.।**

779 **सप्तभिः पुत्रैरदिति-रूप प्रैत पूर्ण्य युगम।**
अजायै मृत्यवें त्वत् पुनर्मातण्डिमार्मरत।।9।।

(सप्तभिः पुत्रैः अदितिः पूर्व्य युग उप प्रैत) सातों पुत्रों के साथ अदिति पूर्वकाल में चली गई और (प्रजायै मृत्यवे त्वत् मार्ताण्ड पुनः आभरत) प्राणियों के जन्म–मरण के लिए ही फिर सूर्य को आकाश में धारण करती है।।9।।

(74)

83 **6 गौरिवीतिः शाक्त्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।**

790 **इयमेषाम मृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्तरत्नम्।**
धियं च यज्ञं च साधन्त-स्ते नोधान्तु वसव्यरमर्स्णम।।3।।

(इयं एषां अमृतानां गीः) यह इन अमर देवों की स्तुति की जाती है। (ये सर्वताता रत्नं कृपणत्त) जो देव सबका कल्याण करने वाले यज्ञ में उत्तम धन देते हैं। (धियं च यज्ञं च साधन्तः और वे हमारी स्तुति और यज्ञ की सिद्धि करते हुए, (ते नः वसव्यं असामि धान्तु) हमें विपल और असाधारण धन दें।।3।।

(75)

84 9 सिन्धुक्षित् प्रैयमेधः। नद्यः जगती।

798 इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमंसचता परुष्या।
असिवन्या मरुद्वधे वितस्तया र्जीवीयेशुणुह्या सुषोग्य।।5।।

हे (गंगे) गंगेः हे (यमने) यमुनेः हे (सरस्वति) सरस्वतिः हे (शुतुद्रि) शुतुद्रिः हे (परुनिव) परुर्षणः हे (असिवन्या मरुद्धप्वे)। असिक्ति के साथ मरुदवृधेः हे (वितस्तया सुषोमया आजीवीये) वितस्ता, सुषोमया इनके साथ आर्जीकीयाः तू (मे इमं स्तोमं सचत श्रृणुहि) और ये सात नदियाँ हमारे इस स्तोत्र स्वीकार कर सुनो।।5।।

(76)

85 8 सर्प ऐरावतो जरत्कर्णः। श्रावणः। जगती।

807 दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेम्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरम्यः।
वायोश्विदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्रेश्चिर्त्य पितुकृत्तरेम्य।।5।।

(दिवः चित अमवत्तरेभ्यः विश्वना चित आश्वपत्वरेभ्यः) जो सूर्य से भी अधिक बलवान तेजस्वी, सुधचा के पुत्र विदु से भी अधिक शीघ्र–कर्मा (वायोः चित सोमरमरुत रेभ्यः) वायु से अधिक सोमरस निचोड़ने में अधिक वेगशाली और (अग्निः चित पितुकृत्तरेभ्यः) अग्नि से भी अधिक अन्नदाता है इस तरह के पत्थरों की (वः आ अर्च) देवों की प्रसन्नता के लिए पूजा करो।।5।।

(82)

86 7 विश्वकर्मा भौवनः। विश्वकर्मा। त्रिष्टुप्।

853 **तमिदर्भे प्रथमं दध्रआपो यम देवाः समगच्छन्त विश्वे।**
अजस्य नामावध्येक मर्पित यस्मिन विश्वानि भुवनानितस्युः।।6।।

(तं इत शर्भे प्रथमं आपः दध्रे) उस ही विश्वकर्मा के गर्म को सबसे प्रथम जल तत्त्व में धारण किया है; (यत्र विश्वेदेवाः समगच्छन्त) जिसमें इन्द्रादि सब देव एकत्र होते हैं। (अजस्य नामो अधिएकं अर्पितम) उस अजन्मा की नाभि में यह समस्त विश्व एक सम्यक् रूप से आश्रित है या इसमें सब ब्रह्माण्ड है। (यस्मिन विश्वानि भुवनानि तस्थुः) जिसमें सब भूत प्राणी आदि रहतेत हैं।।6।।

87 य.प.।

884 **न तं विदाध य इमा जजाना-ऽन्यद्युष्माकमत्तरबभूव।**
नीधरेण प्रावृता जलयां चाऽसुतृपं उक्नयशासश्चरित्त।।7।।

हे मनष्योः (तं न विदाय यः इमा जजान) तुम उसको नहीं जानते, जिससे इन सब लोकों को और प्राणियों को उत्पन्न किया है। (युष्माकं अत्तरं अन्यत बभूव) तुम्हारे अन्तर्गत ईश्वर तत्व निश्चित रूप से पृाकि विद्यमान है। (नीहारेण प्रावृताः) कोहरे से घिरे हुए, अज्ञान–अंधकार से ढके हुए (असुतृपः जल्या च उवन्यशासः चरन्ति) केवल उदर भरण करके तृप्त होने वाले और स्तुतिपाठक होकर केवल मंत्रों का उच्चारण करके पृथ्वी पर विचरते हैं। उनको ईश्वर तत्व का साक्षात्कार नहीं होता है।।7।।

(83)

88 7 मन्युस्तापसः। मन्युः। त्रिष्टुप्।

861 **अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्कनामवभूमि।**
जुहोमि ते धरुणं भध्वो अग-अमा उपाशु प्रथमा पिबाव।।7।।

(अधि प्र इहि) आगे बढ़, दक्षिणतः भव) हमारे दाहिनी ओर हो। (अध नः भूरिवृत्राणि जघंनाव) और हमारे सब प्रतिबंधों को मिटा देवे। (ते महवः अंग धरुणं) उस मधुर रस के मुख्य धारण करने वाले को (जुहोमि) मैं स्वीकार करता हूँ। (उसी उपांशु प्रथमा पिबाव) हम दोनों एकान्त में सबसे पहिले उस रस का पान करें।।7।।

उत्साह धारण कर आगे बढ़ शत्रुओं को परास्त मधुर भाग को प्राप्त करें।।7।।

(85)

89 47 सावित्री सूर्या ऋषिका। 1–5 सोम। अनुष्टुप।

869 सत्येनोत्तमिता भूमिः सूर्येणोत्तमिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि-श्रितः।।1।।

(सत्येन भूमिः उत्तमिता) देवों में सत्य रूप ब्रह्मा ने पृथ्वी को आकाश में धारण किया है। (सूर्येण द्यौः उत्तमिता) सूर्य ने द्युलोक को स्तमित किया है, धारण किया है। (ऋतेन आदित्याः तिष्ठन्ति) यज्ञ के द्वारा देव रहते हैं। (दिवि सोमः अधि धितः) द्युलोक में सोम ऊपर अवस्थित है।।1।।

90 य.प. 6–16 सूर्याविवाह।

879 ऋबसामाभ्याममिहितौ गावौ ते सामनावितः।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्ता दिवि पन्थाश्चराचरः।।11।।

हे सूर्य देविः (ते ऋक्सामाभ्यां अभिहितो गावौ सामनौ इतः) तेरे मन रूप रथ के ऋक् और साम के द्वारा वर्णित सूर्य–चन्द्र रूप बैल शान्त रहते हुए एक दूसरे के सहायक होकर चलते हैं। (ते श्रोत्रं चक्रे आस्ताम) वे दोनों कान मनरूप रथ के दो चक्र हुए। (दिबि चराचर पन्थाः) रथ का चलने का मार्ग आकाश हुआ।।11।।

91 य.प.—32—47 सूर्या सावित्री। त्रिष्टुप।

971 **सुमङ्गलीरियंवधू-रियां समेत पश्र्यत।**
सौभाग्यमस्यै दत्त्वाया-ऽयास्तु वि परेतन।।33।।

(इयं वधूः सुमङ्गलीः) यह वधू शोभन कल्याणकारी है। (इमां समेत पश्यत्) समस्त आशीर्वाद कर्ता आवें और इसे देखें। (अस्यै सौभाग्यं दत्तवाय) इस विवाहिता को उत्तम सौभाग्यशाली होने का आशीर्वाद देकर (अथ अस्तं वि परेतन) अनन्तर सब अपने घर चले जायें।।33।।

92 य.प.।

904 **गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं जया पत्या जरदष्टियथासो।**
भग्मे अर्यमा सविता-महन त्वादगोपिल्याण देवाः।।34।।

हे वधूः (ते हस्तं सौभगत्वाय गृभ्णामि) तेरा हाथ में सौभाग्य वृद्धि के लिए ग्रहण करता हूँ। (यथा मया पत्या जरदष्टिः असः) जिस कारण से तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्थापर्यत पहुँचना (भगः अर्यमा सविता पुरेधिः देवाः त्वा महन शार्हपत्याय अदुः) अग, अर्यमा, सविता और पुरधिः देवों ने तुझे मुझे गृहस्थ धर्म पालन करने के लिए प्रदान किया है।।36।।

93 य.प. अनुष्टुप।

908 **सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।**
तृतीयो अगिष्टे पति-स्तुरीयस्ते मनुष्यजाः।।40।।

(सोमः प्रथमः विविदे गन्धर्वः उत्तरः विविदे) सोमने सबसे प्रथम तुम्हें पत्नी रूप से प्राप्त किया उसके अनन्तर गन्धर्व ने प्राप्त किया। (तृतीयः ते पतिः अग्निः) तीसरा तेरा पति अग्नि है। (तुरीयः मनुष्यजाः) चौथा मनुष्य वंशज तेरा पति है।।40।।

94 य.प.।

912 **अधोरचक्षुरपतिघ्र्योधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।**
वीरसूर्देवकामा स्थोना श नो भव द्विपदे श चतुष्पदे।।44।।

हे वधू: तू (अघोरचक्षुः अपतिघ्नी एधि) शांत दृष्टिवाली और पति को दुःख न देने वाली होओ। (पशुभ्यः शिवा सुमनाः सुवर्चाः) पशुओं के लिए हितकारी, उत्तम शुभ विचार युक्त मनवाली, तेजस्वी (वीर सू: देवकामा स्योता) वीर प्रसविनी और देवों की भक्ति करने वाली सुखकारी होओ। (नः द्विपदेशं भव चतुष्पदे शम) हमारे द्विपादों के लिए और चतुष्पादों के लिए कल्याणकारी होओ।।44।।

95 य.प. अनुष्टुप।

914 **सभ्राज्ञी श्वशुरे भव सुमाज्ञी श्वश्वा भव।**
जनान्दरि समाज्ञी भव समाज्ञी अधिदेवृषु।।46।।

हे वधुः (श्वसुरे श्वश्वां ननान्दरि देवृषु सम्राज्ञी अधि भव) तू श्वसुर, सास, ननद और देवरों की सम्राज्ञी–महासनी के सदृश होओ, सबके ऊपर प्रभुत्व कर।।46।।

96 य.प.।

915 **समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।**
सं मातरिश्वा संधाता समु देष्ट्री दधातु नौ।।47।।

विश्वे देवाः नौ हृदयानि समंजन्तु) समस्त देव हमारे दोनों के हृदयों को परस्पर मिला दें। (आपः मातरिश्वा धाता देष्टी नौ सं उदधातु) जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनों को संयुकत करें।।47।।

(88)

97 **19 आङ्गिरसो मूर्धन्वान, वामदेव्योवा। सूर्य–**

98 **वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप।**

771 स एषां यज्ञो अभवततनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमाणः
सूक्तवाक प्रथमभादिदग्नि-मादिद्धविरजनयत्त देवाः।।8।।
972 सो अर्चिषा पृथिवी धाम तेमा-मृणूयमानो अतपन्महित्वा।
यं देवासोऽजनयत्राग्नि यस्मिभाजुहवुभुवनानि विश्वा।।9।।

प्रथमं सूक्तवाकं) प्रथम द्यावा पृथिवी आदि सूक्तों का मन से निरूपण करते हैं। (आत् इत और अनन्तर) (अग्नि अजनयन्त) मंथन से अगिन को उत्पन्न करते हैं; (आत, इत, देवाः हविः) और इसके पश्चात् देव हवि–अन्न को उत्पन्न करते हैं। (सः एषां यज्ञः अभवत) वह अग्नि देवों को यज्ञादि होता है और (तनूपाः) वह शरीर रक्षक ही है। (तं द्यौः तं पृथिवी त अपः वेद) उसको द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष जानते हैं।।8।।

(यं अग्नि देवासः अजनयन्त) जिस अग्नि को देवों ने उत्पन्न किया (यस्मिन विश्वा भुवनानि आजुहवुः) जिस उत्पन्न अग्नि में सब जगत, लोक, सर्वमेध नामक यज्ञ में आहुति देते हैं। (सः अर्चिषा पृथिवी द्यां उत इमां) वह अग्नि अपनी ज्वाला से अन्तरिक्ष, द्युलोक और इस भूमि को (ऋजूयमानः महित्वा अतपत) सरल गामी होकर अपनी महिमा से ताप देने लगता है।।9।।

ऋग्वेद–दसवाँ मण्डल

(90)

99 16 नारायणः। पुरुषः। अनुष्टुप।

1002 पुरुष एवेदं सर्व यद्मतं यच्च भव्यम।
उतामृत त्वस्येशान्ते यदन्नेनातिरोहति।।2।।

(यद् भूतं यत च भव्यं) जो भूतकाल हुआ था, तथा जो वर्तमानकाल में है, तथा जो भविष्यकाल में होने वाला है, (इदं सर्वे पुरुष एव) वह सब यह पुरुष ही है। (उत अमृतव्यस्य ईशानः) और वह पुरुष अमरपन का मोक्ष का स्वामी है, (यत् अन्नेन अति रोहति) जो अन्न से बढ़ता है।।2।।

100 य.प.।

1005 तस्माद्विराकजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिचयत यश्चाभ्दूमिमथो पुरः।।5।।

(तस्मात् विराट अजायत) उस परमात्मा से विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ। (विराजः अधि–पुरुषः) विराट के ऊपर एक अधिष्ठाता पुरुष हुआ। (सः जातः अत्यरिच्यत) वह उत्पन्न होने पर विभक्त होने लगा। (पश्चात् भूमि अर्थो पुरः) प्रथम भूमि आदि गोल हुए तदनन्तर उस पर के शरीर हुए।।5।।

1 य.प.।

1007 तं यज्ञं वर्हिषि प्रौक्षन पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये।।9।।

(तं अग्रतः जातं यज्ञ पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन) उस प्रथम पैदा हुए यजनीय विराट पुरुष को यज्ञ में प्रोक्षण करके (ये देवाः साध्याः ऋषयः च तेन अमजत्त) जो देव साध्य और ऋषि थे, उन्होंने विराट पुरुष से ही यज्ञ चलाया था।।7।।

2 य.प.।

1008 तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून ताँश्चक्रे वायव्या-नार्ण्यान ग्राम्याश्च ये।।8।।

(तस्मान सर्वहुतः यज्ञात) उस सर्वहुत यज्ञ से (पृषद् आज्यं संमृतं) दही के साथ मिला घी प्राप्त हुआ। (तान वायव्यान आरण्यान पशून) वायु में उड़ने वाले पक्षी तथा वायु देवता के जंगल में रहने वाले उन पशुओं को (ये ग्राम्याः चक्रे) गाम्य पशु बनाए।।8।।

3 य.प.।

1015 सप्तास्यासन परिधय-स्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा मद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन पुरुष प्रशुम्।।15।।

(अस्य सप्त परिधयः आसन्) इस यज्ञ के साथ परिधिय में की और (त्रिः सप्त समिधः कृताः) तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस समिधायें थीं। (देवाः यत यज्ञं तन्वानाः) देव जिस यज्ञ का फैला रहे थे, (पुरुषं पशु अबन्धन्) उसमें इस पुरुषरूपी पशु को बाँधतमे थे।।15।।

4 य.प. 16 त्रिष्टुप।

1016 यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा स्तानि धर्मांणि प्रथमान्यासन।
ते ह नाक महिमानः सचन्त यम पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।16।।

(देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त) देवों ने इस यज्ञ पुरुष के साधन से जो यज्ञ का कार्य करना प्रारम्भ किया। (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन) वे प्रारम्भ के धर्म श्रेष्ठ थे। ऐसा यज्ञ धर्म का आचरण करने वाले धार्मिक लोग (यम पूर्वे साध्याः देवा सन्ति) जहाँ पूर्ण समय के साधन संपन्न यज्ञ करने वाले लोग रहते (ते ह महिमानः नाकं सचन्त) वे ही महात्मा लोग निश्चय से उसी सुखपूर्ण स्थान में जाकर रहने लगे।।16।।

(91)

5. **15 अरुणो वैतहव्यः। अग्निः जगती।**

1018 स दर्शतश्रीरतिथिगृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव।
जनंजनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्यो 3
विशविशम्।।2।।

(दर्शवश्रीः अतिथिः सः गृहे–गृहे वने वने शिश्रिये) दर्शनीय–सुशोभित और अतिथितुल्य पूजनीय अग्नि प्रत्येक गृह में और समस्त वनों में रहता है। (जग्यः जनंजनं तक्ककवीः इव न अति मन्यते) जनहितैषी अग्नि प्रत्येक प्राणी में व्याप्त होकर किसी की भी उपेक्षा नहीं करता है। (विश्यः विशः विशं विशं आ क्षोति) वह प्रजाओं का हितकारी होकर प्रत्येक मनुष्य में निवास करता है।।2।।

(92)

6 **15 शार्यातो मानवः। विश्वेदेवाः। जगती।**

1042 ते हि द्यावपृथिवी भूरिरेतसा नराशसश्चतस्ङ्गे यमोऽदितिः।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा अभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णु
रर्हिर।।11।।

(भूरिरेतसा द्यावापृथिवी यमः अदितिः त्वष्टा देवः) बहुत वृष्टि वर्षक द्यावापृथिवी यम, अदिति, दानशील त्वष्टा, (द्रविणोदाः ऋभुक्षणः रोदसी मरुतः विष्णुः) धन का देने वाला अग्नि, ऋभु, रुद्रपत्नी, मरुत वीर और विष्णु ये सब देव (चतुरङ्ग तराशसः प्रा अर्हिरे) चार अग्नि स्थापित नाराशसं यज्ञ में स्तोत्रों से पूजित होते हैं।।11।।

7. **य.प.**

1044 प्र नः पूषा वरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये।
आत्मानं वर्स्या अभि वातमचत तदश्विना सुहवा

यामनिश्रुतम्।।

(पूषा नः चरथं प्र अवतु) पूषादेव हमार जंगम–चर धन की रक्षा करे। (विश्वेदेव्यः अपां नपात वायु इष्टये) समस्त देवों के हितैषी, जलों के वंशज और वायु यज्ञकर्म के लिए हमारी रक्षा करे। (आत्मानं पात वस्यः) आत्म स्वरूप वायु का अन्न–धन के लिए स्तुति करो। (हे सुहवा अश्विनी) स्तुत्यं अश्विनौः (यामनि तत् श्रुतम) तुम याग के गमन भाग में वह स्तोत्र सुनो।।13।।

8 य.प.

1040 स्तोम व अद्यरुद्राय शिवकसे क्षयद्वीराय नमसादिदिष्टन।
येभिः शिवः स्ववा एवयावमि=र्दिवः सिर्षक्ति
स्वयशानिमामि।।9।।

(येभिः एवयावभिः स्ववान स्वयशाः शिवः दिवः सिषक्ति) जिन अश्वारूढ़ और उत्साली मरुतों की सहायता पाकर आत्मशक्ति युक्त, स्वयं अपने सामर्थ्य से यशस्वी सुखकर परमेश्वर द्युलोक से अपने भक्तों की मिरुतोक साथ रहने वाले वीर शत्रुओं के हत्ता, शक्तिशाली) अभिलाषाओं को पूर्ण करता है, हे ऋत्विकाः तुम (अद्य निकाममिः क्षयद्वीराय शिक्कसे) आज इस याग में निष्काम (α) (रुद्राय नमसा स्तोतं दिदिष्टन) रुद्र को अन्न प्रदान तथा नमस्कार करके स्तोत्र अर्पित करो।।9।।

(94)

9 14 अर्बुदः काद्रवेय सर्पः। गायाण/जगती।

1774 तदिद्वदन्त्यद्रमो विमोचने यामन्नञ्जस्या इवचेछुपब्दिभिः
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः जृञ्जन्ति सोम न
मिनन्तिवप्सतः।।13।।

(अद्रयः तत इत विक्षोचने यामन) आदरणीय पत्थर उस सोम अभिषव कर्म के समय, (अञ्जस्पा इव उपब्दि मिः घ इत वदत्ति)

वेग से जाने वाले रथों के समान शब प्रकट करते हैं। (वप्सतः धान्याकृतः बीजं इव वपत्तः सोम पृञ्यन्ति) सोम निचोड्ने वाले पत्थर, धान्य बोने वाले कृषीवल जैसे बीज बोते हैं, वैसे ही सोम की निगरानी करते हैं। (न मिनत्ति) वे इसका नाश नहीं करते।।13।।

(97)

10 **23 आथर्षणो मिषग्। ओषधयः। अनुष्टुप्।**

1122 **मुञ्चन्तु मा शपथ्या 3-दथो वरुण्यादुत।**
अथो यमस्य पडीशात् सर्वस्माद्देवकिल्बिषात्।।16।।

(मा शपभ्यात एनसः मुञ्यत्तु) ओषधियां मुझे शपथ से उत्पन्न पाप से बचावें। (अथो वरुण्यात उत अथो यमस्य पड्वीशात सर्वस्मात् देवकिल्विशात) और वरुण के पाश, यम की बेड़ी से और देव सम्वन्धि सब प्रकार के पाप से भी वे ओषधियाँ मुझे मुक्त करें।।16।।

11 **य.प.**

1123 **अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि। यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः।।**

(दिवः परि अवपतन्तीः ओषधयः अवदन) द्युलोक से नीचे आती हुई ओषधिया ने कहा था कि (यं जीवं अश्नवामहै न सः पूरुषः रिष्याति) हम जिस जीव पर अनुग्रह करती हैं, उस पुरुष का शरीर रोगों से पीड़ित नहीं होता।।17।।

(98)

12 **12 आर्ष्टिषेणो देवापिः (वृष्टिकामः) देवाः। त्रिष्टुप्।**

1141 **अगे बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहाऽपामीवामप रक्षासिसेध**
अस्मान समुद्राद्बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुपे नः सृजहे।।12।।

हे (अग्रे) अग्निः (मृधः दुर्गहा वि बाधस्व। शत्रुओं की दुर्गमपुरियों को नष्ट कर। (अमीवा अप सेध) रोग को दूर कर। (रक्षासि अप)

राक्षसों का निवारण कर। (अस्मात् बृहतः समुद्रात दिवः अपाम भूमानं इह नः उप सृज) इस महान अन्तरिक्ष रूप समुद्र से और आकाश से इस भूलोक पर हमारे लिए असीम जल प्रदान करो।।12।।

(100)

13 12 दुवस्युवन्दिनः। विश्वेदेवाः। जगती।

1156 आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानायसुन्वतेः
यथा देवान प्रतिभूषेम पाकव-दा सर्वतातिमदिति वृणीमहे।।3।।

(सविता देवः नः ऋजूयते) सर्व प्रेरक सूर्य देव हमारे सरलता चाहने वाले और (सुन्वते यजमानाय वयः पाकवत भग साविषत) अमिषव कर्ता यजमान को पाक से युक्त अन्न प्रदान करे। (यथा देवान प्रतिभूषेम) जिससे हम देवों को संतुष्ट कर सके और उन्हें भूषणवत होवें। (सर्वतार्ति अदिति आ वृणीमहे) सर्व कल्याणकारी अदिति देवी की हम प्रार्थना करते हैं।।3।।

14 य.प.।

1160 न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृत नविष्क्ष्य वसवो देवहेकनम।
भाकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदिति वृणीमहे।।7।।

हे देवोः (वः गुहा भूरि दुष्कृतं न वक्रम) तुम्हारे परोक्ष में मैंने कोई पाप नहीं किया है, (आविष्टय देव हेव्यं न) और प्रकट रूप में जिससे तुम्हें क्रोध आवे, ऐसा कोई कार्य मैंने नहीं किया है। हे (वसवः) सर्वव्यापक देवोः हे (देवाः) देवोः (नः अनृतस्य वर्षसः भाकिः) हमें मर्त्य देह भी प्राप्ति न होवे।।7।।

15 य.प.।

1161 अपामीवा सविता साविषन्नय 2-ग्वरीय इदष सेधन्त्वप्रयः।
गावा यन्न मधुषदुच्यते बृह-दा सर्वतोतिमादिति वृणीमहे।।8।।

(सविता अमीवां अप साविषत) सर्वप्रेरक सविता देव हमारे

कष्टप्रद रोग आदि को दूर करे। (अद्रयः वरीयः इत न्यक अप सेधत्तु) उदार पर्वताभिमानी देव अत्यंत बड़े पापों की अनर्थो को भी दूर करे। (यत्र ग्रावामधुषुत बृहत उच्यते) जहाँ मधुर सोम के आमषव प्रस्तक की भलीभांति स्तुति की जाती है। (सर्वताति अदिति आ वृणीमहे) हम सर्व कल्याणकारी अदिति की प्रार्थना करते हैं।।8।।

16 य.प.

1162 ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषासि सनुतर्युयोत।
स नो देवः सविता पायुरीऽय आ सर्वतातिमदिति वृणीमहे।।9।।

हे (वसवः) देवोः (सोतरि ग्रावा ऊर्ध्वः अस्तु) सोम को निचोड़ने का पत्थर ऊपर रहे। (विश्वा द्वेषांसि सनुतः द्युयोत) तुम हमारे सब छिपे हुए शत्रुओं को दूर करो। (सः सविता देवः नः वायु ईज्यः) वह सविता देव हमारा पालक वंदनीय और स्तुत्य है। (सर्व ताति अदिति आ वृणीमहे) सर्वोत्पादक अदिति की हम प्रार्थना करते हैं।।9।।

19 य.प.।

1165 चित्रस्ते भानुः कतुना अमिष्टि सन्ति स्पृधो जरणि प्राम्प्रधृष्टाः।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गो-स्तूतूर्षति पर्यग दुवस्युः।।12।।

हे इन्द्रः (ते भानुः चित्रः) तेरा प्रकाश आश्चर्यजनक (ऋतुप्ताः अमिष्टिः) हमारे कर्मों को पूर्णता देने वाला और सबके लिए इष्ट है। (ते स्पृधः जरणिप्राः वाली तेरी इच्छाएँ स्तोत्राओं की मनःकामना पूर्ण करने वाली और अजय–किसी से न दबने वाली है। जिस प्रकार (दुवस्युः रजिष्ठया रज्या गोः पश्वः अगं परितुष्यति) दुवस्यु नामक ऋषि अतीव सरल रस्सी के द्वारा गाय का अग्रभाग शीघ्र खींचता है उसी प्रकार मैं अति सरल स्तुति से तेरी ओर वेग से

आता हूँ।।12।।

(101)

18 12 बुधः सौम्यः। विश्वेदेवाः। ऋत्विजोवा। जगती।

1174 **आ वो धिय यज्ञिया वर्त ऊतये देवा देवी यजतां यज्ञियमिहा सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्मधरा पयसा मही गौः।।9।।**

हे (देवाः) देवोः (वः यज्ञिया धियं ऊतये आवर्तेः मैं तुम्हारी परमेश्वर को प्राप्त करने योग्य बुद्धि को संरक्षण के लिए प्रेरित करता हूँ। (यज्ञिया देवी यजतां इह) यज्ञाहं, तेजस्वी और पूज्य बुद्धि को तुम इस यज्ञ भूमि में धारण करो। (सा नः दुहीयत) वह बुद्धि हमारी अभिलाषा पूर्ण करें। जैसे (बबसा इव गत्वी गौः) घास, भूस अन्नादि को खाकर गोष्ठ में गाय सहस्म धारण पयसा मही गौः) सहस्म धाराओं से दूध देती हैं वैसे।।9।।

19 य.प.।

117 **कपृन्नरः कपृथमुद्धघातन चोदयत खुदत् पाजसातये। निष्टिग्यः पुत्रमा च्याव योतय इन्द्रं सबाघ इह सोमपीतये।।12।।**

हे (नरः) मनुष्योः इन्द्र (कपृत) परमसुख देने वाला है। उस (कपृथ उत दधातन) सुख के दाता प्रभु इन्द्र को अपने हृदय में धारण करो और (वाज सातये चेदियत खुदत) अन्न देने के लिए बस, ऐश्वर्य सोम के लिए इसे प्रेरित करो, उसकी स्तुति करो तथा उसने शान्ति–आनंद प्राप्त करो। (इह निष्टिग्न्यः पुत्रं इन्द्रं ऊतये सबाधः) इस लोक में निष्टिगी–अदिति के पुत्र इन्द्र को हमारी रक्षा के निमित्त, पीडाओं से दुःखति तुम (सोम पीतये आच्यावच) सोमपान के लिए सब प्रकार से प्राप्त करो।।12।।

(107)

20 11 दिक आङि्गरसः दक्षिणा वा प्राजापत्या। दक्षिणा दक्षिणादातारोवा त्रिष्टुप्।

1241 तमेव ऋषि तमु ब्रह्माणमाहु-यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्यो यः प्रथमोदक्षिणया रराध।।6।।

(तं एव=ऋषि आहुः तं उ ब्रह्माणं) उस दक्षिणा के दाता को ही ऋषि–तत्वार्थदर्शी और उसी को ही ब्रह्मा कहते हैं। (यज्ञन्वं सात्रगां उक्थशासम) उसी को यज्ञ का नेता, साम का गान करने वाला और वेद वचनों का स्तोत्रा कहते हैं। (सः शुकस्य तिस्मः तन्वः वेद) वह दाता ही दीप्तिमान शुद्ध पवित्र शुक के तीन रूपों को जानता है। (प्रथम यः दक्षिणया रराघ) सबसे प्रथम जो अनादि दक्षिणा से सबको तुष्ट–प्रसन्न करता है।।6।।

(110)

21 11 जमदग्निर्मार्गवः जामदग्न्यो गमोवा। आप्तीसूक्त=
1 इष्मः सनिद्वोऽगिर्वा, त्रिष्टुप्।

1265 समिद्धो अद्य मनुष्यो दुरोणे देवो देवान यजसि जातवेदः
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान त्वं दूतः कविरसि प्रन्वेता

हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्नि (देव मनुषः दुरोणे अद्य समद्धिः देवान यजसि) अपने तेज से दीप्तिमान तू मनुष्य के ग्रह में आज इस कर्म में प्रज्वलित होकर देवों की पूजा करता है। हे (मित्रमहः) मित्रों का सत्कार करने वाले अग्निः (चिकित्वान आ वह च) ज्ञानवान होकर तू देवताओं को हमारे इस यज्ञ में ले आ। और (कविः प्रचेताः त्वं दूतः आस ऋन्तदर्शी और उत्तम चित्रवाला तू देवों का हितकारी दूत है।।1।।

22 य.प. 7 दैव्यौ होताटौ प्रचेतसो।

1270 दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयत्ता विदयेषु कारू-प्राचीन ज्योतिः प्रदिशादिशत्ता।।7।।

(दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मनुष्यः यजध्यै) शुभ गुणों से युक्त दिव्य होता–अग्नि और आदित्य जो श्रेष्ठ, उत्तम वेद मंत्रों के स्तोत्रों के ज्ञाता, मनुष्य के लिए यज्ञ को निर्माण करने वाले, देव पूजा के लिए (यज्ञं मिमाना विदथेषु) यज्ञ का मनुष्ठान करने वाले अपने यज्ञों और अनुष्ठानादि सत्कार्यों में (प्रचोदयत्ता कारू प्राचीन ज्योतिः प्रदिश्य दिशत्ता सबको प्रेरित

करते हैं, वे क्रिया–कुशल, स्तुतियों के कर्ता, पूर्व दिशा के प्रकाश को उत्कृष्ट रीति से उत्पन्न करते हैं।।7।।

23 य.प.। 10 वनस्पति।

1270 उपावसृजत्मन्या समञ्जन देवानां पाथ ऋतुधा हवीषि।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुनाघृतेन।।10।।

हे यूपः (त्मन्या ऋतुथा देवानां पाथः) तू स्वयं स्वसामर्थ्य से ऋतुओं के अनुसार देवों के लिए अन्न आदि और (हबीषि समञ्जन उप अवसृज) अन्य होमीय द्रव्य उत्तम प्रकार से जोकर प्रदान कर। (वनस्पतिः शमिता देवः मधुना घृतेन हव्य सदन्तु) वनस्पति शमिता देव और अग्नि मधुर घृत से हवि का आस्वादन करें।।10।।

(114)

24 10 वैरूपः सध्रिः तापसो धर्मोवा। विश्वेदवाः। त्रिष्टुप्।

1306 धर्मा समन्ता त्रिवृत व्यापतु-स्तयोर्जुष्टि मातरिश्वा जगाम।
दिवस्पयो दिफिषाणा अवेषन् विदुर्देवाः सहसामानमर्कम।।1।।

(समन्ता धर्मा त्रिवृत व्यापतुः) चारों ओर से प्रकाशमान और प्रदीप्त अग्नि और आदित्य देवताओं ने तीनों लोकों को व्याप्त किया है। (मातरिश्वा तपयोः जुष्टि जगाम) अन्तरिक्ष स्थित वायु ने उनको प्रीति प्राप्त की। (सहसामान अर्क देवाः विदुः) जब सब तेजों से युक्त अर्चनीय सूर्य के तेज को देवों ने प्राप्त किया, तब (दिधिषाणाः दिवः पयः अवषन) उन्होंने तीनों लोकों की रक्षा के लिए आकाशीय जल की उत्पत्ति की।।1।।

25 य.प. जगती।

1309 एकः सपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
तं पाथेन मनसापश्यमत्तित-स्तमं माता रेळिहस उ रे किहिमातरम्।।4।।

(एकः सुपर्णः समुद्रं आ विवेश) एक अद्वितीय पक्षी अन्तरिक्ष में संचार करता हुआ उसमें प्रवेश करता है। (स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे) वह ही इस समस्त जगत को विशेष रूप से देखता है। (तं पाकेन मनसा अन्तितः अपश्यम) उस देव को मैं उपासना द्वारा परिपक्क बुद्धि से समीप से देखता हूँ। (माता रेकिह) उसका और (माता वाक् का मिलन होने पर, माता ने उसे प्रेम से अवध्राण किया; (स उ मातरं रेठि) और वह सत्य ही माता के प्रेम में लीन हुआ।।4।।

26 य.प. त्रिष्टुप्।

1311 घट्त्रिशाश्च चतुरः कल्पयन्त-2 छन्दोसि च दघत आद्वादशम
यज्ञं विभाणं कवयो मनीष ऋक्सामाम्या प्र रथंवर्तयान्ति।।

(षटत्रिंशान चतुरः च कल्पयत्तः) छत्तीस और चार चालिस प्रकार के सोमपात्र स्थापित करते हैं और (आ द्वादशं छन्दांसि च दधतः। 12 प्रकार के छन्द कहते हुए सोमपात्र रखते हैं। (कवयः मनीषा यज्ञ विभाय) विद्वान लोग इस प्रकार बुद्धि से यज्ञ का निर्माण करके (रथं ऋक् सामाभ्या प्रवर्तयन्ति। यज्ञ उस रथ का ऋग्वेद और सामवेद से चलाते हैं।

(115)

28 9 वाष्टिहक उपस्तुतः। अग्निः जगती।

1318 त वो वि न दुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपत्तमर्णवम्।
आसा वह्नि न शोचिषा विरष्शिन महिवत न सरजन्त मध्वनः।।3।।

हे स्तोताओः (वः दु–सदं विं न देवं अन्धसः इन्दुं) तुम पक्षी के समान वृक्ष (अरिण) का आश्रय करने वाले तेजस्वी अन्न के दाता, (प्रोथन्तं प्रवपन्तं अर्णवं आसावहि) शब्द करने वाले, सर्वत्र व्यापक– वन को जलाने वाले उदक युक्त, मुख से हवि हवन करने वाले, (शोचिषा विरशिन महिव्रत न अध्वनः सरजन्तुम) अपने तेज से

महान महत कर्म करने वाले और सूर्य के समान मार्गों को प्रकाशित करने वाले अग्नि की स्तुति करो।।3।।

28 य.प.।

1323 ऊर्जो नपात सहसाव्रन्निति त्वो-पस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक्।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतर दघानाः।।8।।

हे (ऊर्जः नपात्) बल के पुत्रः हे (सहसावन) शक्तिशाली अग्निः (त्वा इति उपस्तुतस्य वृषा वाक वन्दते) तुझे इस प्रकार उपस्तुत की तेजस्वी वाणी स्तुवित करती है। हम (त्वां स्तोषाम) तेरी स्तुति करते हैं। (त्वया सुवीराः) हम तेरी कृपा से उत्तम वीर पुत्रों से युवा हो और (द्राघीयः आयुः प्रतर दघानाः) दीर्घतम उत्तम आयु को धारण करें।।8।।

29 य.पं.

1324 इति त्वागे वृष्टि हव्यस्य पुत्र उपस्तुवास ऋषयोऽवोचन।
ताँश्च पाहि गृणतश्च सूरीन वषडषकित्यूध्वाी अनक्षन
नमो नम इत्यूर्ध्वा सो अनक्षन।।9।।

हे (अगि) अग्निः (इति वृष्टिहव्यस्य पुत्राः उपस्तुवासः ऋषयः त्वा अवोचन) इस प्रकार वृष्टिहव्य के पुत्र उपस्तुत नामक द्रष्टा ऋषियों ने तेरी स्तुति की। (तान च गृणतः सूरीन च पाहि) तू उन स्तुति करने वाले और विद्वानों की रक्षा कर (वषट–2 इति ऊध्वासः अनक्षन) ऋषट–2 मंत्र बोलकर मुख तथा हाथ ऊपर उठाकर हवि समर्पित करने वाले और नमः–2 कहकर स्तुति करने वाले स्तोताओं का तू पालन कर।।9।।

(127)

30 8 कुशिकः सौमरः, रात्रियाँ भारद्वाजी रात्रि। गायत्री।

1425 रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षीमः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित।।1।।

(आयती पुरुया अक्षमिः देवी रात्री व्यख्यत) आती हुई, अनेक देशों पर विस्तृत होकर नक्षत्र रूप नेत्रों से देवी रात्री सब संसार को देखती हैं। (विश्वाः श्रियः अधि–अधित) और यह सब प्रकार का शोभा–सौंदर्य धारण करती हैं।।1।।

1426 ओर्वप्ता अमर्त्यानिवतो देव्युद्वतः।
ज्योतिषा बाधते तमः।।2।।

(अमर्त्या देवी उरु निवतः उद्वतः आ अप्राः) अविनाशी देवी रात्रि प्रथम अन्तरिक्ष, अनन्तर, नीचे और ऊँचे प्रदेशों को आचछादित करती है। (ज्योतिष) तमः बाधते) और फिर ग्रहनक्षत्रादि रूप तेज से अंधकार को नष्ट करती है।।2।।

1427 निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्युश्यती।
अपेदु हासते तमः।।3।।

(आयती देवी स्वसारं उषस निः अकृत) आती हुई देवी रात्रि अपनी भगिनी उषा का परिग्रहित करती है। (तमः इत उ अप हासते) और उषकाव्य में अंधकार को दूर करती है।।3।।

1428 सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामभविश्महि।
वृक्षे न वसतिं वयः।।4।।

वयः वृक्षे न वसति) जैसे रात्रिकाल में पक्षी वृक्ष पर निवास करते हैं, वैसे ही (यस्याः ते यामन वयं नि अविक्ष्महि) जिस उसके आने पर हम सुख से गृह में आश्रय लिए हुए हैं, (सा नः अद्य) वह रात्रि देवी हम पर आज प्रसन्न हो।।4।।

1428 नि आमासो अविक्षत् नि पद्वन्तो नि पक्षिणंः।
नि श्येना संश्चिद्वर्थिनः।।5।।

(ग्रामासः नि अविक्षत) रात्रि में सब जन सुख से सोते हैं और (पद्वन्तः नि पक्षिणः नि श्येनासः अर्थिनः चित नि) पादचारी गौ, अश्व आदि पशु–पक्षी और शीघ्रगामी श्येन आदि प्राणि भी

विश्रब्ध होकर सोते हैं।।5।।

1430 यावया वृक्यं 1 वृक, यवय स्तेनभूर्म्ये।
अयां नः सुतरा भव।।6।।

हे (ऊर्म्ये) रात्रिः (वृवयं वृकं यवय) वृकी और वृथ को हमसे अलग कर, जिससे वे हमें काट नहीं सके। (स्तेन बयम) चोर को हमसे दूर ले जा (अन्य नः सुतरा भव) और हमारे लिए तू सर्व प्रकार से सुखकारी हो।।6।।

1431 उप मा पेपिशत तमः कृष्णं व्यक्तमस्ति।
उष ऋणेव यातय।।7।।

(पेपिशत कृष्णं तमः व्यक्तं मा आ उप अस्थित) गाढ़ काला अन्धकार स्पष्ट रूप से मेरे पास आ गया है। हे (उषः) उषा देवीः तू (ऋणा इव यातव) स्तोताओं के ऋण धन प्रदान करके जैसे नष्ट करती है, वैसे ही इस अन्धकार को हटा दे।।7।।

1432 उप ते सा इवाकरं वृणीष्व दुहितार्दिवः।
रात्रि स्तोतं न जिग्युषे।।8।।

(रात्रि) रात्रिः (ते गाः इव आकरम) तुझको दूध देने वाली गौ के समान स्तुतिओं से प्राप्त करूँ। हे (दिवः दुहितः) सूर्यकन्ये। (जिग्येषु स्तोत्रं न वृणीष्व) विनयशील मेरे स्तुति वचनों के समान हवि को भी ग्रहण कर।।8।।

(128)

31 9 विहव्य आङ्रिसः। विश्वेदेवाः। त्रिाष्टुप।

1436 मह्यं यजन्तु मम यानि हव्या ऽऽकतिः सत्या मनसोमेश्रस्तुः एनो मा निशां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः।।4।।

(मह्यं यानि हव्या यजन्तु) मेरे लिए ऋत्विज जो मेरी चरूं पुरोडाशादि यज्ञ सामग्री है, उन हविओं से देवों को यजन करें।

(मे मनसः आकृतिः सत्या अस्तु) मेरे मन के संकल्प–प्रार्थना सत्य हो। (अहं कतमत चन एनः मा निगाम) मैं किसी भी पाप में लिप्त न हो जाऊँ। हे (विश्वे देवासः) विश्वेदेवोः (नः अधि वोचत) तुम हमें यह आर्शीवचन दें।।4।।

(षट्-उर्वीः देवीः) 6-द्यौ, पृथिवी, दिन-रात्रि, जब और (औषधि)

(129)

32 7 प्रजापतिः परमेष्ठी। भाववृत्तम्।। त्रिष्टुप।

1442 नासदासीत्रो सदासीत तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरोयत।
किमार्वरीवः कुह कस्य शर्म-न्नम्मः किमासीग्दहनं
गभीरम्।।1।।

प्रलयावस्था में (न असत् आसीत् न सत् आसीत) न सत था और न असत् था। (तदानी) उस समय (न आकाश से परे जो कुछ है वह भी नहीं था। उस समय (आवरीयः किं) सबको ढकने वाला क्या था? (कुह कस्य शर्मन) कहां किसका आश्रय था? (गहनं गंभीरं अम्भः किं आसीत्) अगाध और गम्भीर जल क्या था?

प्रलयावस्था में न पंचभूतादि सत पदार्थ ही थे न कुछ अभाव रूप असत् ही था, न आकाश था, न लोक ही थे, फिर किसने किसको ढका? कैसे ढका? किससे ढका? यह सब अनिश्चित ही था।।1।।

1443 न मृत्युरासीद्भृतं न तर्हि न, रात्र्या अह आसीत प्रकेतः।
अनीदवात स्वधया तदेक तस्माद्रान्यम परः किं चेनासा।।2।।

(तर्हि) उस समय (न मृत्युः न अमृतं आसीत) न मृत्यु थी न अमृत था, (रात्र्याः अहः प्रकतः न आसीत) सूर्यचन्द्र के अभाव से रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था। उस (अ–वातं) वायु से रहित दशा में (एक तत्) एक अकेला वह ब्रह्म (स्वधया) अपनी शक्ति के साथ (आनीत) प्राण ले रहा था। तस्मात परः अन्यत

किंचन न आस) उससे पर या मित्र और कोई वस्तु नहीं थी।

मृत्यु अमृत भी कुछ नहीं था और सूर्य चन्द्रमा के न होने से दिन रात का भेद भी मालूम नहीं होता था, पर एक ब्रह्म ही ऐसी दशा में विद्यमान था।।2।।

1444 तम आसीत तमसा गूकहमगेऽप्रकेत सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छन्येनाम्वपिहितं पदासीत तपसस्तन्महिनाजायतेकम्।।3।।

(अग्रे) सृष्टि से पूर्व प्रलय दशा में (तमः आसीत) अंधकार था (तमसा) सब अंधकार से आच्छादित था (अप्रकेत) अज्ञात दशा में और (इदं आः सर्व सलिलं) यह सब कुछ जल ही जल था और (यत आसीत्) जो कुछ था, वह (आयु तुच्छयेन अपिहितं) चारों ओर होने वाले सदसद्विलक्षण भावसे आच्छादित था और (तत् एकं) वह एक ब्रह्म (तपसः महिना अजायत तप के प्रभाव से हुआ।

प्रलयावस्था में चारों ओर अंधकार फैला हुआ था, अतः कुछ भी ज्ञान नहीं होता था और जो कुछ था वह भी बड़ा अजीब था।।3।।

1445 कामस्तदगे समवर्तवाधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन हृदि प्रतीष्या कवयोमनीषो।।4।।

(तत अग्रे) उससे सबसे पहले परमात्मा के मन में (कामः सं अवर्तत) सृष्टि करने की इच्छा पैदा हुई (अधि) उसके बाद (यत् मनसः) जिस मन से (प्रथमं) सबसे प्रथम (रितः आसीत) बीज या कारण उत्पन्न हुआ। फिर (कवयः) बुद्धिमानों ने (मनीषा हृदि प्रति इयम) बुद्धि द्वारा हृदय में विचार कर (बन्धुं सतः) बंधन के कारण भूत विद्यमान वस्तु को (असति निर अविन्दन) अविद्यमान में पाया। अर्थात् सत जगत का कारण, असत ब्रह्म पाया।।4।।

सबसे पहले परमात्मा के अंदर सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा हुई। उसके सब सृष्टि का उपादान कारण भूत बीज पैदा हुआ।

यह बीज रूपी सत पदार्थ ब्रह्म रूपी असत से पैदा हुआ।।4।।

1446 तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-मधः स्विदासीइदुपरिस्विदासीइत। रेतोका आसन महिमान आसन त्स्वधा अवस्तात प्रयहिः परस्तात।।5।।

इस प्रकार (रेतोधाः आसन) बीजं को धारण करने वाले पुरुष (भोक्ता) हुए और (महियानः आसन) महिलाएँ (भोग्या) उत्पन्न हुई। फिर (एषां रश्मिः विततः) इन भोक्ता और भोग्या को किरण फैली और (तिरश्चीनः अधः स्वित उपरिस्वित आसीत) तिरछी, नीचे, ऊपर फैली, इनमें (स्वधा अवस्तात) भोग्य शक्ति निकृष्ट थी और (प्रयतिः परस्तात) भोक्त शक्ति उत्कृष्ट थी।

इस ब्रह्म की बीज शक्ति से, भोज्य और भोक्ता का एक जोड़ा पैदा हुआ और इन्हीं भोज्य और भावना से ही साठी सृष्टि हुई। इसमें भोज्य निकृष्ट होने के कारण वह भोक्ता के अधीन हुई।।5।।

1447 को अद्धा वेदक इह प्रवोयत कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना-ऽया को वेद यत आबभूव।।6।।

(कः अद्वा वेद) कौन मनुष्य जानता है, और (इहकः प्रवोचत) यहाँ कौन कहेगा कि (इयं विसृष्टिः कुतः–2 आ जाता) यह सृष्टि कहाँ ले और किस कारण उत्पन्न हुई। क्योंकि (देवाः) विद्वान या दूरदर्शी भी (अस्य विसर्जनेन अर्वाक्) इस सृष्टि के उत्पन्न होने के बाद ही उत्पन्न हुए हैं, (अथ) इसलिए यह सृष्टि (यतः आ बभूव) जिससे उत्पन्न हुई उसे (कः वेद) कौन जानता है।

इस सारी सृष्टि की उत्पत्ति कैसे और कहाँ से हुई, यह कोई नहीं जानता, क्योंकि उस रहस्य को जानने वाले विद्वानों को उत्पत्ति भी बाद में हुई।।6।।

1448 इयं विसृष्टियति आबभूव यदि वा दधे यदि वा प्र।

र्या अस्याध्यक्षः परमे व्योमन त्सो अङ्ग वेद यदि वा वेद।।7।।

(इयं विसृष्टिः यतः आ बभूव) यह सृष्टि जिससे पैदा हुई वह इसे (यदि दधे यदि वान) धारण करता भी है या नहीं, इसको हे (अंग) विद्वान (सः वेद) वही जानता है, (यः परमे व्योमन अस्य अध्यक्षः) जो पमर आकाश में रहता हुआ इस सृष्टि का अध्यक्ष है (यदि वा) अथवा सम्भवतः वह भी (न वेद) नहीं जानता हो।

इस सृष्टि को पैदा करने वाला इसका अध्यक्ष परब्रह्म इस सृष्टि का धारक है। और वही इस सृष्टि को पूर्णतया जानता है।।7।।

(130)

33 7 यज्ञः प्राजापत्यः। भाववृत्तम। जगती।

1449 यो यज्ञो विश्वत स्तन्तुमिस्तत एकशतं देवकर्मेमिगयतः।
इमे वयत्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्मासते तते।।1।।

(यः यज्ञः तन्तुभिः विश्वतः ततः) जो यज्ञ भूतादि तन्तुओं के द्वारा चारों ओर फैलाया गया है, तथा जो (देव कर्मेभिः) विद्वानों के कर्मो के कारण (एकशत आयतः) सौ वर्ष अर्थात् अनन्त काल तक रहने वाला है। इस सृष्टि रूपी यज्ञ के वस्म को। (इमे पितरः) ये पितर (ये आययुः) जिन्होंने इसे व्याप्त कर रखा है (वयत्ति) बुनते हैं और (प्र त्रय अप वय इत तते आसते) उत्कृष्ट बुनो निकृष्ट बुनो इस प्रकार कहते हुए इस विस्तृत लोक में रहते हैं।।4।।

यह सृष्टि एक यज्ञ है। इस यज्ञ में पंचभूत रूपी वस्त्रों को बना जाता है। यह अनन्त काल तक रहने वाली सृष्टि देवों के कर्मों से धारण की जाती है। इस सृष्टि यज्ञ में विद्वान कपड़े का बुनते हुए अनेक प्रकार के उत्कृष्ट और निकृष्ट वस्त्र या पदार्थों का निर्माण करते हैं।।1।।

1450 पुमौ एनं तउत उत कृणन्ति पुमान हि लब्नेअधिनअस्मिन।

इमे मयूरवा उप सेदुरु सदः सामानि चकुस्तसराण्योतवे।।2।।

(पुमान एनं तन्दुते उत कृणन्ति) प्रजापति पुरुष ही इस सृष्टि रूपी यज्ञ को फैलाता है और समेरता है, यही (पुमान) पुरुष इसको अस्मिन नौका इस पृथ्वी लोक तथा स्वर्गलोक पर (वि तत्रे) फैलाना है फिर (सदः) इस यज्ञ पृथवी में (इमे मयूरवा) ये किरणें आकर (उप सेतुः) बैठती है तथा (आतव) बुनने के लिए (सामानि तसराणि चक्रुः) सामरूपी ताने बाने को बनाती है।

प्रतापति परमात्मा इस सृष्टि का उत्पादक और संहारक दोनों है। परमात्मा ही अपनी शक्ति से इस सृष्टि का विस्तार करता है। इसी सृष्टि में परमात्मा की शक्तियाँ निवास करती हैं तथा अनेक प्रकार के सुखों को पैदा करती है।।2।।

कृणन्ति–समेटना, लपेटना, कृतीवेष्टने

1452 अगेर्गायज्यभवत सयुग्वो-ष्णिहया सविता सं बभूव।
अनुष्टुमा सोम उक्थैमहस्वान बृहस्पते बृहती वाचभावत।।4।।

(अग्रेः गायत्री स युग्वा अभवत) अग्नि का गायत्री सहायक हो गई। (उष्णिहया सविता संवभूव) उष्णिक के साथ सविता मिल गया। (अनुष्टुमा सोम) अनु0 के साथ सोम (उक्थैः महस्वान) उक्थो के साथ तेजस्वी सूर्य तथा (बृहती बृहस्पतेः वाच आवत बृहती ने वृहस्पति के वाणी का आश्रय लिया।।4।।

1453 विराण्मित्रा वरुणयोरमिश्री-रिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अहः।
विश्वान देवाञ्जगत्या विवेश तेन
चाब्लप्रक्रृषयोमनुष्याः।।5।।

(विराट मित्रावरुणयोः अमिश्रीः) विराट छ0 मित्रा वरुण के आश्रय से रहा (त्रिष्टुप इह इन्द्रस्य अह्वः भागः) और त्रिष्टुप इस यज्ञ में, इन्द्र और दिन का भाग बना (जगती विश्वान दवान आविवेश जगती छन्द सम्पूर्ण देवों में प्रविष्ट हुआ और (तेन) उस

यज्ञ से (ऋषयः मनुष्याः ऋषि और मनुष्य (चाक्लूप्र) सामर्थ्यवान बने।।5।।

1454 **चाक्लूप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे।**
पश्यन मन्ये मनसा चक्षसा तान य इमं यज्ञ मयजन्त पूर्वे।।6।।

(पुराणे यज्ञे जाते) प्राचीन काल में यज्ञ के पैदा होने पर तने उस यज्ञ से (नः पितरः ऋषायः मनुष्याः) हमारे पूर्वज, ऋषि और मनुष्य (चाक्लूप्रे) उत्पन्न हुए। (पूर्वेये इमं यज्ञ अमजन्त) पहले जिन्होंने इस यज्ञ को किया (तान चक्ष सा मनसा पश्यन) उन्हें देखने के साधन मन से देखता हुआ मैं उनकी (मन में) पूजा करता हूँ।

1455 **सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः।**
अपोदीचो अपं शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन भदेम।।1।।

(धीराः सप्त दैव्याः ऋषयः) धैर्यवान सात दिव्य ऋषियों ने (सहस्त्रोमाः सह छन्दसः सह प्रभा आवृतः) स्तोत्र छन्द, सीमा इन सबसे युक्त होकर (पूर्वषां पन्यां अनुदृश्य) पूर्वजों के मार्ग को जानकर (रश्मीन रथ्यः न) लगामों को सारथि के समान (अनु आ–लेमिरे पकड़ा।।7।।

(131)

34 9 सुकीर्तिः काक्षीवतः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

1462 **तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्मा-ऽपि भद्रे सौमन से, स्याम।**
स सुत्रामा स्ववा इन्द्रौ अस्मे आराच्चिद द्वेषः सनुतयुयोतु।

(यज्ञियस्व सुमतौ वयं स्याम) पूज्य पुरुष की उत्तम बुद्धि में हम रहें। (भद्रे सौ मन से अपि) कल्याण कारक अच्छे मन से युक्त भी हम हों। (सुत्राम्य स्वषान सः इन्द्रः) उत्तम पालन करने वाला, धनवान वह इन्द्र (अस्मे, आरात चित द्वेषः सनुतः युयोत हमारे से दूर देश में छिपे हुए शत्रुओं को सदा के लिए दूर करें।।7।।

(132)

35 7 शतपूतो नार्मेधः। मित्रावरुणौ। प्रस्तारपङ्क्तिः।

1438 यवोहि मातादिति विचेतसा द्यौन भूमिः पर्यसा पुपूवनि।
अव पिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः।।6।।

(विचेतसा) विशेषज्ञान वाले मित्र और वरुणः (युवोः हि माता अदितिः) तुम्हारी माता अदिति–भूमि है। (द्यौः न भूमिः पयसा पुपूतनि) द्युलोक के समान यह भूमि भी जब–अन्न से पवित्र–शुद्ध करने वाली है। तुम (प्रिया अव दिदिष्टन) हमें प्रिय धन दे। और (सूरः रश्नीमः निनित्रः) सूर्य के किरणों से हमें पुष्ट करो।।6।।

(134)

36 7–गोधा ऋषिका। इन्द्रः। पंक्तिः।

1483 नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्मश्रुत्य चरामसि।
पर्क्षेमिरपिकक्षेमि-रत्रामि सं रमामहे।।7।।

हे (देवाः) देवोः (नकिः मिनामसि) इन्दादि देवों के विषय में हम कोई भी त्रुटि नहीं करते। (न किः योपयामसि) हम किसी भी कर्म में शैथिल्य वा उदासीनता नहीं करते। मंत्रश्रुत्यं–वरामसि) हम मंत्र और श्रुति के अनुसार आचरण करते हैं। (पक्षेभिः अपिकक्षेमिः अन्न सं रमामहे) हम स्तोत्र और हवि से इरा यज्ञकर्म का सम्पादन करते हैं।।7।।

(139)

37 6 देव गन्धर्वो विश्वावसुः। सविता। त्रिष्टुप्।

1511 सूर्यरश्मि हरिकेशः पुरस्तात सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्मम।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान त्सपश्यन विश्वाभुवनानि
गोपाः।।1।।

(सूर्यरश्मिः हरिकेशः सविता पुरस्तात अजस्म ज्योतिः उदयान)

सूर्य की प्रेरक किरणों वाला, उज्वल पीतवर्ण सविता देव पूर्व की ओर अखण्ड तेज प्रकट करता है। (तस्य प्रसवे विद्वान गोपाः पूषा याति) उसका उदय होने पर ज्ञाता और संरक्षक पूषा देव आकाश में प्रमाण करता है। (विश्वा भुवनानि संपश्यन) सारे जगत के प्राणियों को उत्तम रीति से प्रकाशित करता है।।1।।

1515 विश्वावसुरमि तभो गृणात दिव्यो गन्धर्वो रजसोविभरनः। यद्वा धा सत्ययुत यन्नविद्य धियो हिस्वानोधियइन्नो अव्याः।।5।।

(दिकः रजसः बिमानः पिश्वासुः गन्धर्व) द्युलोक में रहने वाला और जल का निर्माता विश्वावसु गन्धर्व (नः तत अभि गृणातु) हमें यह सब विषय बनाये। हे विश्वावसोः (धियः हन्वानः) तू हमारी स्तुतियों को प्रेरित करता हुआ (नः धियः इत अव्याः) हमारे बुद्धि युक्त कर्मों की रक्षा कर।।5।।

(140)

38 6 अग्निः पावकः। अग्निः। सतोबृहती। 1–2 विष्टारपक्तिः।

1518 ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशास्तिभि-मन्दस्व धीहिमिर्हितः। तवे इषः स दधुर्भूरिवर्पस-श्चित्रोतयो वामजाताः।।3।।

हे अग्निः (पावक वर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः मानुना उदियर्षि) पवित्र–शुद्ध कान्ति धारण करने वाला निर्मल तेज वाला और अत्यन्त तेजस्वी तू दीपित से उदित होता है। (पुत्रः मातरा विचारन उपापास) अराणी में संचार करने वाला पुत्र रूप तू हमारी रक्षा करता है और (उमे रोदसी, पृणाक्षि) दोनों धावा–पृथ्वी लोकों के साथ संबद्ध करता है। (अर्थात् पृथिवी पर के लोग हवि अर्पण करके देवों को संतुष्ट करते हैं और देव जलवृष्टि से पृथ्वी को प्रसन्न करते हैं।।2।।?

39 य.प.। सतोबृहती।

1519 इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभि-रस्मे रायो अमर्त्य।

स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम।।4।।

हे (ऊर्जः नपात जातवेदः) अन्नोत्पन्न सर्वज्ञ अग्निः (सुशस्तिभिः मन्दस्व, धीतिमिः हितः) हमारे स्तोत्रों से आनंद प्रसन्न प्रसन्न हो और हमारे अग्नि होत्र आदि कर्मों से तृप्त हो। (भूरिवर्पलः चित्रोतयः वामजाताः इषः त्वे सं दधुः) अनेक रूपों वाले, आश्चर्य कारक और स्तुत्य हविरूप अन्न तुझको भक्त अर्पण करते हैं।।3।।

40 य.प.।

1522 ऋतावानं महिषं विश्वदर्शन-मग्निं सुम्नाय दधिरे पुरोजनाः।

श्रुत्कर्ण सप्तथस्तम त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा।।6।।

(ऋतावानं महिषं विश्वदर्शनं अग्नि) सत्यनिष्ठ पूजनीय और सबों को दर्शनीय अग्नि को (सुम्राय जना पुरः दधिरे) सुख के लिए मनुष्य अपने समक्ष स्थापित करते हैं। अग्निः (श्रुत्कर्ण सप्रथस्तुम दैव्यं त्वा) स्तुति श्रवण करने वाला अतिशय प्रख्यात और देवी गुणों से युक्त तेरी (मानुष्य युगा गिरा) मनुष्य, यजमान पति–पत्नी स्तुति करते हैं।।6।।

(142)

41 8 शाङ्‌र्गाः स्तम्बमित्रः अनुष्टुप।

1536 आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः।

हवाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे।।8।।

हे अग्निः (ते आयने परायणे पुष्पिणीः दूर्वाः रोहन्तु) तेरे आगमन पर और जाने पर हमारे इस निवास भूमि में पुष्प लताएँ और दूबा उगे। उसमें (ह्रदाः च पुण्डरीक काणि) नाना जलाशय हों जिसमें अनेक प्रकार के कमल हों। (समुद्रस्य इमे गृहाः) समुद्र के जल प्रदेश में हमारे ये निवास स्थान हो जिससे तुमसे हम दाह

को न प्राप्त हो सके।।8।।

(149)

42 5 अर्चन हैरव्यस्तूपः। सविता। त्रिष्टुप।

1573 सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरूत्मान पूर्वो जातः स उ अस्थानु धर्मं। गाव इव गाम यूयुधिरिवाश्वान व्याश्वेव वत्ससुमना दुवना। पश्चेददमन्यदभवद्यजत्र-ममर्त्यस्य अवनस्य भूना।। पतिरिव जायाभमि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्वधाः।।4।।

(अमर्त्यस्य भुवनस्य भूना यजत्रं) उस अमर–अविशानी स्वर्गयि सोम के द्वारा जिन देवों का यज्ञ होता है, वे (इदं अन्यत पश्चा अभवत) सब दूसरे देव सविता से पीछे उत्पन्न हुए हैं। हे (अङ्गः) स्तोता (सुपर्णः गरुलान सवितुः पूर्वः जातः सुंदर पारववाला गरुड पक्षी सविता प्रभु से ही सबसे पहले उत्पन्न हुआ है, और वह (स उ अस्य धर्म अनु) सविता देव के धर्म को अनुसरण करता है।।3।।

(गावः इव ग्रामम) जिस प्रकार वन में चरने वाले गौएं गांव की ओर शीघ्रता से आती हैं (मुमुधिः इव अश्वान) योद्धा युद्ध के लिए अश्वो की ओर जाता है, सुयनाः दुहाना वाश्वा इव वत्सम) प्रसन्न मना बहुत दूध वाली गौएं जिस प्रकार प्रेम से बछड़े के पास जाती हैं (पतिः इव आया अभि पति जिस प्रकार अपनी पत्नी का प्राप्त करता है, उसी प्रकार दिवः धर्ता विश्ववारः सविता नः वि अभि एतु) स्वर्ग का धारक सबसे द्वारा प्रार्थनीय सविता देव हमारे पास करते आवे।।4।।

1575 हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा ऽऽङ्गिरसो जुहे वाजे अस्मिन। एवा त्वार्चभवस वन्दयानः सोमस्यवाश प्रति जागराहम।।5।।

हे (सवितः) प्रेरक सविता देवः (आङ्गिरसः हिरण्यरूपः अस्मिन

वजे) अङ्गिरस पुत्र हिरण्यस्तूप इस अन्न के निमित्त किए यज्ञ में (यथा त्वा जुहे) जिस प्रकार तुझे बुलाता है, (एव अर्चन त्वा अवसे वन्दमानः) उसी प्रकार प्रार्थना करने वाला मैं तुझे मेरी रक्षा के लिए वन्दना करता हुआ बुलाता हूँ। (सोमस्य अंशु इव अहं प्रति जागर) जैसे यज्ञ की समाप्ति तक सोमलता की रक्षा के लिए यजमान जागते हैं, वैसे ही तेरी सेवा के लिए मै। जागृत रहूँगा।।5।।

(152)

43 5 शासो भारद्वाजः। इन्द्रः अनुष्टप्।

1590 अपेन्द्र द्विषतो मनो ऽप जिज्यासतो वधम्।
वि मन्योः शर्मं यच्छ वरीयो यवया वधम।।5।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः द्विषतः मनः अप) शक का मन नष्ट कर। जिज्यासतः वध अप) हमें मारने वाले की इच्छा करने वाले के हथियार को विनष्ट कर (मन्या) शत्रु के क्रोध से हमें बचा। वरीयः शर्म त्रि यच्छ) उत्तम–श्रेष्ठ सुख प्रदान कर। (वध–यवय) शत्रु से प्राप्त मृत्यु को दूर कर।।5।।

(154)

44 5 यमी वैवस्वती। भाववृत्तम। अनुष्टुप्।

1599 ये चित पूर्वं ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः।
पितृन तपस्वतो यम ताश्चिदेवापि गच्छतात।।4।।

(येचित) और जो (पूर्वे) पूर्व पुरुष। ऋतसापः) ऋत का पावन करने वाले, अथवा यज्ञों के नित्य नियम पूर्वक करने वाले (ऋतावानः) सत्य वा यज्ञ से युक्त और इसीलिए (ऋतावृधः) ऋत व यम के वर्धक थे तथा तपस्वतः तप से युक्त (पितृन) पूर्व पितरों को (तान चित) प्राप्त हो।

जो पितर सत्य के रक्षक हैं, यज्ञादि का अनुष्ठान नित्य नियम से करने वाले हैं तथा तपस्वी हैं ऐसे पितरों को हे मृतात्मा

तू परलोक में जाकर प्राप्त हो।।4।।

(156)

45 5 केतुराग्नेयः। अग्निः। गायत्री।

1609 अग्ने नक्षत्रमजर-मा सूर्यं रोहयो दिवि।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः।।4।।

हे (अग्रे) अग्निः तूने (अजरं नक्षमं सूर्य दिवि आरोहयः) जरा रहित, हमेशा गमन करने वाले सूर्य को अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित किया है जो (जनेभ्यः ज्योतिः दधत) सब जनों के लिए प्रकाश का धारण करता है।।4।।

(157)

46 प्रभुवन आप्त्यः साधनो वा यौवनः। विश्वेदेवा। द्विपदामिष्टुप।

1613 आदित्यैरिन्द्रः सगणो भरुद्भि-रस्माकं भूत्वविता तनूनाम।।3।।

(आदित्यैः मरुद्भि च सगणः इन्द्रः) आदित्य देवा और मरुतो के साथ रहकर इन्द्र (अस्माकं तनूजांअविताभूत हमारे शरीरों का रक्षक हो।।3।।

1615 (शचीभिः अर्कम प्रत्यञ्च अनयन)

उत्तम कर्मों से युवा जब पूजनीय स्तोत्र इन्द्रादि के लिए स्तोता कहते हैं, तब (आत इत इषिरां स्वधां पर्यपश्यन) अनन्तर ही बहने वाला वृष्टिजन सब लोगों ने देखा।।5।।

1615 प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीमि–रादित स्वधामिषिरा पर्यपश्यन।।5।।

(158)

47 5 चक्षुः सौर्यः सूर्यः। गायत्री।

1619 **चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुविरव्यै तनूभ्यः।**
सं चेद वि च पश्येम।।4।।

हे सूर्यः (नः चक्षुषे चक्षुः धेहि) हमारे आँखों को तेज दे। तनूभ्यः विरव्यैचक्षमः) तू हमारे शरीरों को दर्शन के लिए प्रकाश दे–अवलोकन शक्ति दे। (च इदं सं पश्येन विच) जिससे –तेरे तेज से इस जगत को हम उत्तम प्रकार से देखे और विविध प्रकार से देखें।।4।।

(161)

48 **5 प्राजापत्यो यक्ष्यनाशनः। इन्द्राम्नी राजयक्ष्मघ्रवा।**
अनुष्टुप।

1636 **आहार्ष त्वाविद त्वा पुनरागाः पुनर्नव।**
सर्वाङ्ग सर्वंते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम्।।5।।

हे रोगी (त्वा आहार्षम) तुझे मैंने नृत्य के पाश से लौटा लाया है, (त्वा अविदम) तुझे मैंने पाया है। हे (सुनः नव) पुनः नया जीवन धारण करने वाले (पुनः आगाः) तू हमारे पास पुनः आ जा रहे (सर्वाङ्ग) सर्वाङ्ग परिपूर्णः (ते सर्वं चक्षु ते सर्वं च आयुः अविदम) तेरे समस्त जगत को देखने वाले आँख और सम्पूर्ण आयु को मैंने प्राप्त किया है।।5।।

(162)

49 **6 ब्राह्मो रक्षोहा। रक्षोहा। अनुष्टुप्।**

1637 **ब्रह्मणाग्गिः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।**
अमीवा यस्ते गर्मं दुर्णामा योनियाशये।।1।।

(ब्रह्मणा संविदानः रक्षोहा अग्निः इतः बाधताम) वेद मंत्रों के साथ एकमत–संतुष्ट होकर राक्षसों को हन्ता अग्नि यहाँ से इस शरीर से समस्त बाधाएँ दूर करे। (यः अजीवा दुर्नाम ते गर्म योनिअश्या) जो रोग दुनभि–अर्शरूप से तेरे गर्म या योनि स्थान

में गुप्त रूप से रहता है।।1।।

(163)

50 6 विवृहा काश्यपः। यक्ष्मनाशनम। अनुष्टुप्।

1648 **अङ्गादङ्गल्लोन्मोलोमो जात पर्वणि पर्वणि।**
यक्ष्म सर्वस्मादात्मन-स्तमिद वि वृहामि ते।।6।।

(अङ्गात–2 लोभ–2 पर्वणि–2 जातं) प्रत्येक अंग से प्रत्येक सोम से और शरीर के प्रत्येक सन्धि स्थान में उत्पन्न हुए। ते सर्वस्मात आत्मनः इदं ते यक्षमं वि वृहामि) तेरे सब शरीर से उस इस रोग को मैं दूर करता हूँ।।6।।

(164)

51 5 प्रचेता आङ्गिरसः। दुःस्वप्रनाशनम्। अनुष्टुप्।

1649 **अपेहि मनसस्पते उप, काम परश्चर।**
परा निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः।।1।।

हे (मनसः पते) स्वप्नावस्था में विकल्प करने वाले मन के स्वामी (अप इहि) तू दूर हो (अप काम परः चर) तू दूर चला जा, दूर देश में यथेष्ट विचरण कर। (निर्ऋत्यै परः आ चक्ष्त) पाप देवता निर्ऋति को जो दूर रहती है, उसे कहो कि, जीवतः मनः बहुधा) जीवित व्यक्ति के मेरा मन बहुत प्रकार से सर्वत्र घूमता है–भोगादि के विषय में रमता है, इसलिए मुझे कष्ट नहीं देता।।1।।

1650 **भद्र वै वरं वृणते भाद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।**
भद्रं वै स्वते चक्षुं बहुत्रा जीव मनः।।2।।

(भद्रं वै वरं वृणीते) सब लोग उत्तमः फल की इच्छा करते हैं। (दक्षिण भद्रं युञ्जन्ति) और वे उत्तम शुभ फल प्राप्त करते हैं। (वैवस्वते भद्र चक्षुः) विवस्वत के पुत्र यम की शुभ दृष्टि की मैं प्रार्थना करता हूँ। वह हमें दुःख न देवे। (बहुत्रा जीवितः मनः) विविध विषयों में मेरा मन रममाण हो।।2।।

1651 **यदाशसा निःशसा मिशसो-पारिभ जाग्रतो यत स्वपत्तः।**
अग्नि र्विश्वान्यवं दुष्कृता न्य जुष्टान्यारे अस्मद् दधातु।।3।।

(यत आशसा जाग्रतः, उपारिम) जिस दुष्कृत की आशंका से हम जाग्रत रहते हैं, (यत् स्वपत्तः) जिसको सोते हुए प्राप्त करते हैं और (निःशंसा, अभिप्पसा) निःशंक होकर शुभ की कामना करते हुए हम सोते हैं, (विश्वानि अजुष्टानि दुष्कृतानि) उन सब अप्रिय दुष्कर्मों को (अग्निः अस्मत् ओर अप दधातु) अग्निदेव हमसे दूर रखे।।3।।

1652 **यदिन्द्र ब्रह्मणस्यते ऽमिद्रोहं चरामसि।**
प्रचेता न आङ्गिरसा द्विषुता पात्वहंसः।।4।।

हे (इन्द्र) इन्द्रः हे (ब्रह्मणस्पते) बृहस्पतिः (यत् अग्नि द्रोहं चरामसि) जो तुम्हारे विषय में मैं दुःस्वप्न के कारण पाप किया हो, तो हमें क्षमा करो।

(आङ्रिसः प्रचेताः द्विषतां अंहसः न पात) आजिरस प्रकृष्ट ज्ञानी वरुण भी द्वेषी शत्रुओं के पाप से हमारी रक्षा करे।।4।।

1653

।। 5

(अद्य अजैष्म असनाम च) आज हम विजयी हुए हैं और प्राप्तव्य को पा लिया है। (वयं अनागसः अभूम) हम निरपराध ा–निष्पाप हो गए हैं। (जाग्रत स्वप्नः सः पापः संकायः यं दिष्मः तं ऋच्छत) जागृत और स्वप्नावस्था में जो संकल्पजन्य पाप हुआ है, वह जिसका हम द्वेष करते हैं उसको अब प्राप्त हो जाय। (य नः द्वेष्टि तं ऋच्छतु) जो हमारा द्वेष करता है, उसके पास जाय।।5।।

(167)

52 **4 विश्वामित्र-जमदरती। सोम वरुण-ब्रह्मस्पति-अनुमति मधवत-धात-विधातारः। जगती।**

1656 सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्माणि वृहस्पतरनुमत्या उशर्मवि।
तवाहमध मघवमुप स।।3।।

(राज्ञः सोमस्य वरुणस्य धर्माणि) राजा स्पेन और वरुण के यज्ञ में, तथा (वृहस्पतेः अनुमत्या शर्मणि अहं) बृहस्पति और अनुमति की शाख में –यज्ञगृह में रहने वाला मैं, हे (मघवन! इन्द्रः अद्य तव उपस्तुतो) आज तेरी स्तुति करता हूँ। हे (धातः विधातः) धाता और विधाताः तुम्हारी अनुमति से मैं (कलशान प्रभ क्षमम् हुतावशिष्ट सोम का पान करता हूँ।।3।।

1967 प्रसूतो अक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे।
सुते सातेन यधागमं वां प्रति विश्वामित्र्जमदग्री दमे।।4।।

हे इन्द्रः (प्रसूतः चरौ यक्षं अपि अकरम) तेरा द्वारा प्रेरित होकर मैंने यज्ञ में चरु के साथ अन्य आहरीय हवि आदि तैयार किए हैं। (प्रथमः सूरिः इमं स्तोत्रं च उन्मृजे) मुख्य स्तोता होकर मैं इस स्तोत्र को तेरे लिए उच्चारित करता हूँ। इन्द्र कहता है–हे (विश्वामित्र जमदग्री) विश्वामित्र और जमदग्निः (वां प्रति दमे सुते सातेन यदि आगमय) तुम्हारे यज्ञ गृह में सोम अभिमत होने पर जब मैं धन लेकर आऊँ तब तुम उत्तम प्रकार से स्तुति करे।।4।।

(168)

53 4 अनिको वातायनः। वायुः। त्रिष्टुप्।

1971 आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः।
र्घाषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम।।4।।

यह वायु (देवानां आत्मा भुवनस्य गर्भः) इन्दादि भी देवों का आत्मा और भुवन का गर्भ है। (एषः देव! यथावंश चरति) यह वायु देव अपनी इच्छा के अनुसार विहार करता है (अस्य घोषाः इत शृण्विरे) इसके शब्द ना ही सुनाई देते हैं। (रूपं न) इसका रूप प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता।

(तस्मै वाताय हविषा विधेम) उस वायु देवकी हम हवि आदि द्वारा से सेवा करते हैं।।4।।

(170)

54 4 विभ्राट् सौर्यः। सूर्यः। जगती।

1678 इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वनिद्धनजिदुष्यते बृहत्।
विश्वभ्राड भ्राजो महि सूर्यो दूश उरु पप्तये सहाप्रोजो अच्युतम्।।3।।

(ज्योतिषां श्रेष्ठं उत्तमं इदं ज्योतिः) सब ज्योर्तिमय पदार्थों में श्रेष्ठ और उष्कृष्ट यह सूर्य का तेज है, (विश्वाजिस धनजित बृहत उच्यते) वह सब जगत को जीतने वाला, धनों को जीतने वाला और व्यापक कहा जाता है। (विश्वम्राट भ्राजः सूर्यः दृशे) वह सारे जगत् का प्रकाशक, प्रकाशमान और महान सूर्य के रूप में दिखाई देता है। (अरुः सहः प्रच्मुतं ओजः प्राप्तमे) वह विस्तीर्ण, अभिभूत करने वाला अविनाशी तेजोरूप बल से व्याप्त होता है।।3।।

(176)

55 4 सूनुरार्भवः। अग्निः। अनुष्टुप।

1706 अयमग्रिरुरुष्य-त्यमृतादिव जन्मनः।
सहसश्चित सहीयान देवो जीवातवे कृतः।।4।।

(अयम् अग्रिः अमृतात् इव जन्मनः उरुष्यति) यह अग्नि अमृत के समान ही, मनुष्य के निमित्त उत्पन्न भय से, हमारी रक्षा करता है। यह (सहसः चित सहीयान) बलवान से भी बलवान है (देवः, जीवातये वृतः) विधाता ने जीव के जीवनदान के लिए इसको बनाया है।

(177)

56 3 पतङ्गः प्राजापत्यः। मामाभेदः। त्रिष्टुप।

1708 **पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तः।**
तां धोतमानां स्वर्गं मनीषा-मृतस्य पदे कवयो निपान्ति।।2।।

(पतङ्ग वाचं मनसा बिभर्ति) सूर्य वेदरूपी वाणी ज्ञान युक्त मन से धारण करता है। (ताम गर्भे–गन्धर्वः अत्तः अवदत) उसको ही शरीर में वर्तमान प्राणवायु उच्चारित करता है, प्रेरित करता है। (द्योतमानां स्वयं मनीषां तां) तेजस्वी, स्वर्गीय सुखदायक और बुद्धि की अजीश्वरी वाणी को (ऋतस्य पदे कवयः नि पान्ति) यज्ञ के स्थान में बुद्धिमान, विद्वान उत्तम प्रकार से सुरक्षित करते हैं।।2।।

(181)

57 **3 क्रमेण–प्रथो वासिष्ठः सप्तयो भारद्वाजः धर्मः सौर्यः विश्वेदवाः। त्रिष्टुप।**

1719 **प्रथश्च यस्य स प्रथश्च नामा-ऽनुष्टुमस्य हविषो हषिर्यत।**
धातुर्द्युतानात सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः।।1।।

यस्य नाम प्रथः च सप्रथः च वसिष्ठः आनुष्टभस्य हविषः) जिसका नाम प्रथ और सप्तथ थे, उनमें उसे वसिष्ठ ने अनुष्टुप छन्द से हवि को अर्पण किया, (यत हविः रथन्तरम्) वह हवि प्रदान करने का उपयुक्त साधन रथतरं नाम का साम है। वह (धातु द्यतानात सवितुः च विष्णोः आ जभार) वसिष्ठ ने धाता तेजस्वी सविता और विष्णु से प्राप्त किया था।।1।।

1720 **अविन्द्रन्ते अतिहितं यदासी-द्यज्ञस्य धाम परम गुहायत।**
धातुर्धुतानात सवितुश्च विष्णो-भरद्वाजो बृहदा चके अग्रे।।2।।

(ते यत् यज्ञस्य परमं धाम गुहा) उन धाता आदियों ने जो यज्ञ का परम आधार और गुप्त था और (यत अतिहितं आसीत् अविन्दन) जो बृहत् साम नाम का तेजस्वी सबसे परे स्थित है, उसे पाया था। (धातुः द्युतनात सवितुः च विष्णोः अग्रेः च बृहत् भरद्वाजः

आ चक्रे) यह बृहत सोम धाता तेजस्वी सविता, विष्णु और अग्नि से भरद्वाज ने प्राप्त किया था।।2।।

1721 तेऽबिन्दन मनसा दीध्याना यजुः कम प्रथमं देवयानमः।
धातुर्घुतानात सवितश्च विष्णो-रा सूर्याद्भरन धर्ममेते।।3।।

(ते दीप्यानाः प्रथमं देवयानं धर्म) उन तेजस्वी धाता आदियों ने मुख्य–श्रेष्ठ, देवों के हवि प्राप्त करने योग्य, साधन धर्म (यजुः स्कभ मनसा अविन्दन) यजुर्वेदीय मन्त्र–परम ज्ञान को मन से प्राप्त किया था। (धातुः द्योत मानात सवितुः विष्णोः सूर्यात च एते आ अभरन) इस प्रकार उस धर्म को धाता, तेजस्वी सविता, विष्णु और सूर्य से वे प्राप्त करते हैं।।3।।

(184)

58 3 त्वष्टा गर्मकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः।
विष्णु–स्वष्ट–प्रजापति–धातारः। अनुष्टुप्।

(विष्णुः योनि कल्पयतु) व्यापक देव विष्णु गर्भाधान स्थान उत्तम समर्थ करें। (त्वष्टा रूपाणि पिशतु) त्वष्टा नाना अवयव बनावे। (प्रजापतिः आ सिञ्चत, प्रजापति वीर्य सेचन में सहायक हो। हे स्मी! (धाता ते गर्भ दधातु) धाता तेरे गर्भ का धारण करो।।1।।

1728 विष्णुर्योनि कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशत।
आ सिञ्चतु प्रजापति-धीता गर्भं दधातु ते।।1।।

(185)

59 3 सत्यधृतिर्वारूणिः। आदित्य (स्वस्त्ययनम) गायत्री।

1731 महिः त्रीणामवोऽस्तु द्युतं मित्रस्यार्यम्णः।
दुराधर्ष वरुणस्य।।1।।

(मित्रस्य अर्मम्णः वरुणस्य त्रीणाम) मि, अर्यना और वरुण इन तीनों का (घुक्षं दुराघर्षे महि अवः अस्तु) तेजस्वी, प्रबल और

महान् रक्षण सहाय्य हमें प्राप्त हो।।1।।

(186)

60 3 वातायन उलः। वायुः। गायत्री।

1734 वात आ वातु भेषजं शनु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयूंषि तारिषत।।1।।

(वातः नः हृदे भेषजं आ वातु) सर्प व्यापक वायु हमारे हृदय के लिए औषध के समान होकर आये। (शंभु भयोभु नः आयूषि प्र नारिषत) वह कल्याणकर और सुखकारक होकर, हमें दीर्घ जीवन प्रदान करे।।1।।

1736 यददो वात ते गृह 3 ऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।।3।।

हे (वात) वायुः (ते गृहे यत अदः अमृतस्य निधिः हितः) तेरे राह में जो यह अमृत का निधि स्थापित है, (ततः नः जीव से देहि) उसमें से हमारे जीवन के लिए दे।।3।।

(188)

61 3 आग्नेयः श्येनः। जातवेदा अग्निः। गायत्री।

1744 या रूचो जातवेदसो देवमा हव्यवाहनीः।
तामिर्नो युज्ञमिन्वतु।।3।।

(जातवेदसः याः रुचः देवत्रा हव्यवाहिनीः) जातवेदा अग्नि की जो काली–करालि आदि सात जिह्वाएँ–शिखाएँ हैं, जिनके द्वारा वह देवों के पास हवियों को ले जाता है, (तामि–नः यज्ञं इचतु उनके साथ वह हमारे यज्ञ में पधारे।।3।।

(190)

62 3 आधुच्छन्दसोऽधमर्षणः। भाववृत्तम्। अनुष्टुप्।

1748 ऋतं च सत्यं चाभीद्वात तपसोऽध्यजायत।

ततो राज्यजायत ततः समुदो अर्णवः।।

उस परमात्मा के (अभीद्वात तपसः) महान दीप्तिमान तप से (ऋत च सत्यं च अंधि अजायत) ऋतु और सत्य पैदा हुए। (ततः रात्री अजायत) इसके बाद प्रलय रूपी रात्री हुई (ततः अर्णवः समुद्रः) तब जल से भरा समुद्र पैदा हुआ।।1।।

1749 **समुद्रादर्णवादधि सवत्सरो अजायत।**
अहोरात्राणि विदध-द्विश्वस्य मिषतोवणी।।2।।

(अर्णवात समुद्रात अधि) जल से भरे समुद्र के बाद (संवत्सरः अजायत) संवत्सर उत्पन्न हुआ फिर (मिषतः विश्वस्य वशी) निमेषोन्मेष करने वाले जगत को वश में करने वाले उस परब्रह्म ने (अहोरात्राणि) दिन और रात (विदधत) बनाये।।2।।

1750 **सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत।**
दिवं च पृथिवी वा-ऽन्तरिक्षमथो स्वः।।3।।

(धाता) सबको धारण करने वाले परमात्मा ने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य, चन्द्रमा (दिवं च पृथिवी) द्युलोक और पृथ्वी लोक (अन्ताऊ अथः स्वः) अन्तरिक्ष और सुख लोक को (यथा पूर्व) पहले के समान ही (अकल्पयत) बनाया।।3।।

(191)

63 4 संवनन आङ्गिरसः। 1 अग्निः 4 संज्ञानम्। अनुष्टुप्।

1751 **संसमिद्युवसे वृष-भगे विश्वान्यर्थ आ।**
इळ स्पदे समिध्यसे स नो वसन्यायं।।1।।

हे (वृषन अग्रे) समस्त सुखों की वर्षा करने वाले अग्नि तू (अर्थः विश्वानि संसम इत युवसे) सबका स्वामी होकर समस्त तत्त्वों को मिलाता है। तू (इकः पदे समिध्यसे) भूमि के यज्ञवेदी पर प्रकाशित होता है। (सः नः वसूनि आ भर) वह प्रसिद्ध तू हमें नाना

प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करा।।1।।

1754 समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।4।।

(वः आकूतिः समानी) तुम्हारा संकल्प एक समान रहे और (वः हृदयानि समाना) तुम्हारे हृदय एक विध एक समान हों। (वः मनः समान अस्तु) तुम्हारे मन एक समान हों, (यथा वः सुसह असति) जिससे तुम्हारा परस्पर कार्य पूर्ण रूप से संगठित हो।।4।।

(दसवाँ मण्डल समाप्त।।

●●●



लेखक का परिचय